करणीदान कविया

भारतीय साहित्य के निर्माता

करणीदान कविया

लेखक

राजकृष्ण दूगड़

साहित्य अकादेमी

Karnidan Kaviya : A monograph in Hindi by Raj Krishna Dugar on the Rajasthani medieval poet, Sahitya Akademi, New Delhi (2002), Rs. 25

प्रथम संस्करण : 1992
अनुमुद्रण 2002

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001.

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

सीआईटी कैम्पस, टी.टी.आई. पोस्ट, तरामणि, चेन्नई 600 113
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

ISBN 81-7201-336-1

मूल्य : पंच्चीस रुपये

मुद्रक : जीवन ऑफसेट प्रेस

अनुक्रम

पृष्ठभूमि

सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों और मानवीय आदर्शों की संरक्षा का प्रश्न अनादिकाल से मानव-जीवन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रहा है। मानवीय मूल्यों और आदर्शों की सुरक्षा पर ही समूह, समाज तथा राष्ट्र की सुरक्षा अवलम्बित रहती है। अतः यह कहना अप्रासंगिक नहीं है कि मानव ने अनादिकाल से स्वत्व और स्वाभिमान की सुरक्षा तथा व्यक्तित्व को समुन्नत करने वाले मूल्यों की संस्थापना एवं सुरक्षा के लिए उल्लेखनीय कार्यों का संपादन किया है। धर्माचार्यों ने धर्म के द्वारा, दार्शनिकों ने नीति तथा दर्शन के द्वारा, राजनेताओं ने राजनीति के द्वारा, शूरवीरों ने शौर्य के द्वारा तथा साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से मानवीय आदर्शों की सरंक्षा और सामाजिक जीवन के अभ्युत्थान का सतत प्रयास किया है।

विश्व के किसी भी देश के इतिहास को उठाकर देखा जाए, वहाँ के राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत परिवर्तनों के मूल में इन्हीं में से एक अथवा एक से अधिक तत्त्वों का प्रभुत्वपूर्ण योगदान रहता है। राजस्थान का सामाजिक जीवन और यहाँ का इतिहास भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। भौतिक संसाधनों की समृद्धि की तुलना में यहाँ शौर्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कहा भी गया है —

केसर नंहँ निपजै अठै, नंहँ हीरा निपजंत।
सिर कटियां खग सांभणा, इण धरती उपजंत।।

इतिहास इस सत्य का प्रमाण है कि राजस्थान के साहित्यकारों ने सदैव नैतिक आदर्शों और मानव-मूल्यों का ही समर्थन किया है, भले ही वे साधारण से साधारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में ही क्यों न रहे हों। राजस्थान के रचनाकारों ने क्षणभंगुर स्वार्थों के लिए

कलम नहीं उठाई । यही कारण है कि यहाँ के रचनाकारों की लेखनी में तलवार की धार से भी अधिक तीक्ष्णता, शक्ति और प्रभाव दिखायी देता है । वीरता मानव-जीवन की वांछनीय विशेषता है । वीरत्वहीन पुरुष तो क्या, नारी अथवा बालक होना भी राजस्थान में अभिशाप समझा जाता है । जन्मघुट्टी के रूप में पिलाई जाने वाली वीरता की विशेषताओं से राजस्थान का जनमानस भली भांति परिचित हैं । कहा भी गया है —

मरै वीर कायर मरै, अन्तर दोनां अेह ।
माटी में कायर मिळै, धरै सूर जस देह ।।

राजस्थान के जिन आत्मबलिदानी नर-पुंगवो ने अन्याय तथा अत्याचार के समक्ष मस्तक नहीं झुकाया, राजस्थान के रचनाकारों ने ऐसे शहीदों के अद्‌भुत पराक्रम का अपनी रचनाओं में कीर्तिगान किया है । राजस्थान में रचित विपुल वीर-रसात्मक साहित्य और यहाँ की भाषा और साहित्य ने कायर से कायर मनुष्य को वीरत्व का अमृत पिलाया है । जीवन और जगत् की वास्तविकताओं को मूर्त्तरूप प्रदान करने में डिंगल साहित्य अनुपम है ।

यह कथन सही है कि ऐतिहासिक साहित्यिक रचनाएँ, शत-प्रतिशत इतिहास नहीं होती परन्तु ऐसी रचनाओं में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण को इतिहास से सर्वथा पृथक् भी नहीं किया जा सकता । इतना ही नहीं, शोध-अन्वेषण के अनन्तर यह स्पष्ट हो गया है कि राजस्थानी की अनेक रचनाओं ने इतिहास की लुप्त कड़ियों को जोड़ने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । राजस्थान के मध्यकालीन ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन करते समय विदित होता है कि उनमें मात्र सुनी-सुनाई बातों का ही संग्रह नहीं है अपितु विविध रचनाकारों ने युद्धक्षेत्र में उपस्थित रहकर, अपनी आँखों से जो कुछ देखा, उसे काव्यमय रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है । समाज में जब राजनीतिक उथल-पुथल मची हो, विविध शासकों के बीच मनोमालिन्य का वातावरण हो, सत्य, न्याय और मानवीय मूल्यों को विघटन के कगार

पर पहुँचा दिया गया हो और ऐसे सामाजिक एवं राजनैतिक धुंधलके में कोई योद्धा शौर्य का सूर्य बनकर, वीरत्व का प्रकाश विकीर्ण करने का साहस करता है, तो साहित्यकार की लेखनी ऐसे व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकती ।

पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के दीर्घ अन्तराल में हिन्दू और मुसलमानों तथा प्रान्तीय शासकों के बीच अनेकानेक रोमांचक युद्ध हुए । इन युद्धों का सांगोपांग विवरण समसामयिक काव्यकृतियों में अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ देखा जा सकता है । केशवदास गाडण का गजगुणरूपक और नरहरिदास बारहठ रचित "राव अमरसिंह रा दूहा", मोडजी आशियाकृत "पाबू प्रकास", चिमनजी कविया कृत "सोढायण" किसना आढा कृत "भीमप्रकास" जग्गा खिड़िया की "वचनिका राठौड़ राव रतनसिंध महेशदासोत री", महेशदास राव का "बिन्हैरासो" सगता सांदू का "इन्द्रसिंघ रूपक", हेमरतन की "गोरा-बादल पद्मिनी चउपई", करणीदान कविया का "सूरज-प्रकास", और "विरद सिणगार", वीरभांण रतनू का "राजरूपक", बखता खिड़िया का "महाराजा अभैसिंघजी रा अहमदाबाद झगड़ा रा कवित्त" आदि ग्रन्थ ऐसे ही कतिपय उद्धरणात्मक काव्य-ग्रन्थ हैं जिनमें साहित्य-धर्म के साथ इतिहास-धर्म का भी बखूबी निर्वाह दिखाई देता है ।

कुछ समय पूर्व तक साहित्य-जगत् में डिंगल ग्रन्थों के प्रति घोर उपेक्षा का भाव दिखाई देता था, परन्तु शोध-अन्वेषण के फलस्वरूप जैसे-जैसे डिंगल के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाश में लाये जा रहे हैं, वैसे-वैसे ही मुग़ल-बादशाहों के संरक्षण में लिखाए जाने वाले तवारीख-ग्रंथों द्वारा सन्दर्भित ऐतिहासिक घटनाओं की सत्यता पर प्रश्नचिह्न अंकित होने लगे हैं । डिंगल काव्य में वर्णित ऐतिहासिक घटनांकन में तिथि, वार, संवत्, दोनों पक्षों के योद्धाओं की नामावली, समर-क्षेत्र, घोड़े-हाथियों तथा अस्त्र-शस्त्रों का तथ्यात्मक विवरण, राजस्थानी के रचनाकारों के अद्भुत काव्य-कौशल एवं उनके हृदय में स्थित इतिहास के प्रति अनन्य निष्ठा का परिचायक है । तत्कालीन युद्धों के समय, समरांगण में सम्बन्धित रचनाकारों

की उपस्थिति के कारण ही, काव्य-वर्णनों में ऐतिहासिक-तथ्यान्वेषण का इतना सुन्दर और सटीक रूप में सम्प्रेषण सम्भव हो सका है । राजस्थानी साहित्य के प्रणेताओं ने अपने साहित्य में मानवोचित कार्य करने वाले शूरवीरों का अभिनन्दन किया है, वहीं अपमानजनक जीवन जीने में भी संकोच नहीं करने वाले कायरों की खुलकर भर्त्सना की है । कवि नाथूदान महियारिया ने वीरों में वीरता के मनोभाव जागृत करने वाले कवियों के लिए उचित ही लिखा है –

कायर नूं लानत दियै, सूरां नूं साबास ।
रण अरियां नूं त्रास दै, चारण गुण री रास ।।

वि. सं. 1787 में करणीदान कविया ने, साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय ग्रन्थ "सूरजप्रकास" का प्रणयन किया । इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में मारवाड़ के नरेश महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार सरबुलन्द खां के मध्य अहमदाबाद में लड़े गए भीषण युद्ध का वर्णन किया गया है । अहमदाबाद युद्ध के नाम से प्रसिद्ध इस युद्ध में कवि भी स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित था, अतः युद्ध-घटनाओं की प्रमाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह नहीं किया जा सकता । फिर इन घटनाओं की पुष्टि समसामयिक अनेक ऐतिहासिक विवरणों से भी होती है । युद्ध-वर्णन की दृष्टि से "सूरजप्रकास" की गणना राजस्थानी के श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थों में होती है । शब्दों के साथ युद्ध की ध्वनि और चित्र साकार करने की क्षमता की दृष्टि से भी "सूरजप्रकास" अपने आप में अनूठी रचना है ।

"सूरजप्रकास" का काव्यरूप निर्धारण करते समय हमारे सामने कुछ समस्याएँ उपस्थित होती हैं । इसका मूल कारण यह है कि डिंगल-काव्यों की रचना परम्परागत सिद्धान्तों के आधार पर नहीं हुई है । डिंगल-काव्यों में संस्कृत महाकाव्यों की भांति न सर्ग-विभाजन है और न कथा की अन्विति । नायक के जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके जीवन का पूर्ण उत्कर्ष दिखाने के स्थान पर ऐतिहासिक वृत्त-वर्णन ही कवियों का प्रमुख उद्देश्य रहा है । इस प्रकार कथा की विशालता एवं शृंखलाबद्धता वर्तमान

रहते हुए भी उन्हें महाकाव्यों की कोटि में नहीं रखा जा सकता ।

वे खण्डकाव्य की कोटि में भी नहीं रखे जा सकते, क्योंकि उनमें जीवन का खण्ड-चित्र न होकर अनेक चित्र एक साथ अंकित हैं । प्रबन्धात्मकता होने के कारण अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध-निरपेक्ष मुक्तक भी वे नहीं हैं । आचार्य विश्वनाथ ने मिश्रकाव्य में गद्य-पद्यमयता का जो आदर्श चम्पूकाव्य में प्रतिष्ठित किया है, दवाबैतों की उपस्थिति एवं "विरुद" की भांति राजा-महाराजाओं की गद्य-पद्यमय प्रशस्ति होते हुए भी इसे "चम्पू" काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती । पद्य की भांति सानुप्रासिकता की छटा एवं "वयण सगाई" अलंकार का सर्वत्र निर्वाह होने के कारण दवाबैत शुद्ध गद्य भी नहीं कहला सकते ।

प्रबन्ध-काव्य रूप में अपभ्रंश-काल से वर्तमान तक अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं । इन विभिन्न प्रबन्ध-काव्यों में विषय एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से काफी भिन्नता दीख पड़ती है, परन्तु मोटे तौर पर सबमें कुछ सामान्य विशेषताएँ मिल जाती हैं । ये प्रबन्धकाव्य किसी राजा, सामन्त अथवा कवि के उपास्य देव के चरित को आधार बनाकर लिखे गये हैं । अधिकतर प्रबन्धकाव्यों में विषयवस्तु के ऐतिहासिक आधार, यथार्थ जीवन, वास्तविक भाव-भूमि और सहज अभिव्यक्ति का अभाव पाते हैं । इन प्रबन्ध-काव्यों में तथ्य और कल्पना, इतिहास और रोमांस का विचित्र समन्वय है । ऐसा करने में कवि को वीर-रस का वर्णन करने के लिए अनेक कल्पित युद्धकारणों की उद्‌भावना करनी पड़ी है । अपने चरित-नायकों के शौर्य-प्रदर्शन के लिए इन कवियों ने अनेक वास्तविक प्रसंगों के साथ ही कल्पना-प्रसूत वर्णन भी प्रस्तुत किए हैं । कई प्रबन्धकाव्य तो एकदम कल्पना के ढांचे पर ही खड़े कर दिए गए हैं । प्रायः सभी प्रबन्ध-काव्यों में चरित-नायकों की वंशावली दी गई है । इन वंशावलियों का प्रारम्भ बहुधा किसी दिव्य-गुणोत्पन्न महापुरुष या देवी-देवताओं से किया जाता है ।

कथातत्त्व में सुघड़ता और रोचकता लाने के लिए कवि ने अनेक

बार अतिप्राकृत प्रसंगों की भी अवतारणा की है । किन्हीं भी ऐसी संभाव्य घटनाओं की उद्‌भावना करने में कवि को कोई हिचक नहीं होती थी, जो उसके आश्रयदाता के शौर्य, साहस, चतुराई, दानशीलता आदि उच्च गुणों को प्रदर्शित करने में अथवा अपने बहूद्देशीय ज्ञान का परिचय देने में सहायक हो सकती थी । अतः सभी प्रबन्ध-काव्यों में अतिप्राकृत प्रसंगों की उद्‌भावना होती है ।

ऐतिहासिक प्रसंगों को लेकर रचित गद्य-पद्य-मय कृतियाँ अपभ्रंश तथा संस्कृत में भी मिलती हैं । परवर्ती रासो रचनाएँ वस्तु-संघटन, वर्णन-विस्तार, शैली तथा कथा-निरूपण की दृष्टि से प्रबन्ध की कोटि में आ जाती हैं । डा. चन्द्रकान्त मेहता के अनुसार रास और प्रबन्ध दोनों एक दूसरे के पर्याय के रूप में पन्द्रहवीं सदी के बाद प्रयुक्त होते थे । यही नहीं, एक ही कृति को चरित, प्रबन्ध, चउपई, पवाड़ु और रास नाम से पुकारा गया है । इससे यह ज्ञात होता है कि कालान्तर की रास, रासौं, प्रबन्ध वेलि, छंद, विलास, रूपक, प्रकास, चउपई तथा चरित आदि साहित्यिक रचनाएँ प्रबन्ध-काव्य की कोटि में आती हैं । इनमें तात्त्विक अन्तर का अभाव है ।

डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि जिस प्रकार "रूपक" नाम देकर चरित- काव्य लिखे गए, "विलास" नाम देकर चरित-काव्य लिखे गए, "प्रकास" नाम देकर चरित-काव्य लिखे गए, उसी प्रकार "रासो" या "रासक" नाम देकर भी चरित-काव्य लिखे गए । जब इन काव्यों के लेखक इन शब्दों का व्यवहार करते होंगे तो अवश्य ही उनके मन में कुछ न कुछ विशिष्ट काव्यरूप रहता होगा । राजपूताने के डिंगल साहित्य में परवर्ती काल में ये शब्द साधारण चरित-काव्य के नामान्तर हो गए हैं । बहुत से चरित-काव्यों के साथ "रासो" नाम जुड़ा मिलता है—जैसे रायमलरासो, राणारासो, रतनरासो इत्यादि । इसी प्रकार बहुतेरे चरित-काव्यों के साथ "विलास" शब्द जुड़ा हुआ है—जैसे राजविलास, जगविलास, विजयविलास, रतनविलास, अभैविलास आदि । इसी प्रकार कुछ काव्यों के नाम के साथ "रूपक" शब्द जुड़ा हुआ है—जैसे राजरूपक, गजगुणरूपक, गोगादेरूपक आदि । "रासो", "विलास" एवं "रूपक"

शब्द इसकी ओर संकेत करते हैं कि ये काव्य-रूप किसी समय गेय और अभिनेय थे। परन्तु धीरे-धीरे ये भी कथाकाव्य या चरित-काव्य के ही रूप में याद किए जाने लगे। इनका पुराना रूप क्रमशः भुला दिया गया।

जब उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम डिंगल प्रबन्धकाव्यों की परीक्षा करते हैं तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं —

(1) जैन रासो काव्यों से लेकर परवर्ती डिंगलकाव्यों में प्रारंभ में मंगलाचरण अवश्य रहा है।

(2) डिंगल प्रबन्धकाव्यों में बहुधा ग्रन्थ के प्रारंभ में अथवा अन्त में कवि अपना परिचय, वंशविवरण, गुरु का उल्लेख और कभी कभी ग्रन्थ की महत्ता का निर्देश भी कर देता है। रचनाकाल का संकेत भी कभी स्पष्टतः और कभी प्रतीकपद्धति से कर दिया जाता है। वैसे अपवाद के रूप में ऐसी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनके रचयिता के जीवन के सम्बन्ध मे जानकारी नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—सूरजप्रकास में कविया करणीदान ने ग्रन्थ के प्रारंभ में एवं अन्त में ग्रंथ की महत्ता अंकित की है तथा नामकरण का आधार ही प्रस्तुत किया है।

(3) डिंगल के प्रबन्धकाव्यों की एक विशेषता वस्तु-वर्णन है। नगर-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, स्त्री-पुरुषवर्णन, युद्ध-वर्णन, घोड़ों, वृक्षों, योद्धाओं के नामों की परिगणना आदि कवि के अनिवार्य कर्त्तव्य हैं। वह अपनी प्रतिभा से पाठक के सामने एक ऐसा चित्र बनाता है जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का ब्यौरा तथा भेदोपभेदों सहित प्रत्येक वस्तु का यथाक्रम नाम आता चला जाता है। सूरजप्रकास में भी इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के वस्तुवर्णन एवं सूचीपरिगणन हैं।

(4) डिंगल के प्रबन्धकाव्यों में सामयिक झलक मिल जाती है। यद्यपि बहुधा कवियों ने अपने मूल लक्ष्य को ही निभाने की कोशिश की है, फिर भी प्रसंगानुकूल अवसर मिलने पर अन्य जानकारी देने की भी उनकी चेष्टा रही है। डिंगल-रचनाओं में शास्त्रीय परम्परा और लोकवार्ता का विचित्र समन्वय पाया जाता है।

इसी से उनमें विभिन्न कथानक रूढ़ियों का धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा । ये काव्य किसी शास्त्रीय परम्परा के रूप मात्र नहीं हैं, ये दरबारी होते हुए भी यथार्थवादी हैं, काल्पनिक होते हुए भी ऐहिक हैं, ज्ञान-दर्शन कराते हुए भी पाण्डित्य से उबले नहीं पड़ते तथा राजा विशेष से सम्बन्ध रखते हुए भी युगप्रतिनिधि हैं । वे राजकवियों द्वारा लिखे गए थे, फिर भी जनता के जीवन से उनका निकट संबन्ध है ।

वस्तुतः "सूरजप्रकास" इसी परम्परा में लिखा गया प्रबन्धकाव्य है । इसे ऐतिहासिक शैली के चरित काव्य की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमें संस्कृत के प्रशस्तिमूलक चरित-काव्यों तथा हिन्दी के "पृथ्वीराजरासो" की काव्यपद्धति अपनायी गई है । संस्कृत-साहित्य में वर्णित महाकाव्य की कसौटी पर इसे नहीं कसा जा सकता । डिंगल में ऐसे प्रबन्धकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा रही है और उनकी कुछ विशेषताएँ एवं प्रवृत्तियाँ हैं । "सूरजप्रकास" में वे सब प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं । मंगलाचरण, वंशविवरण, नामकरण एवं ग्रंथ-महत्ता-निर्देश, वस्तु-वर्णन, सूची-परिगणन, समसामयिक परिस्थितियों की झलक, कथानक रूढ़ियों का प्रयोग, ऐतिहासिकता एवं रोमांस का सुन्दर सम्मिश्रण आदि डिंगल प्रबन्ध-काव्यों की समस्त विशेषताएँ "सूरजप्रकास" में उपलब्ध हैं, अतः स्वरूप-निर्धारण की दृष्टि से हम इसे ऐतिहासिक चरित-काव्य ही कहेंगे ।

डिंगल-वीरकाव्य-परम्परा

वीरत्व की वन्दना भारतीय समाज में अत्यन्त पुनीत कर्म मानी जाती रही है। पुराणों और प्रशस्तियों से होती हुई यह परंपरा "हर्षचरित" तक पहुँचती है और उसके पश्चात् यह वीरकाव्य रूपी वल्लरी अनेक रूपों में पल्लवित और पुष्पित होती रही है। डिंगल वीरकाव्यों की अखण्ड परंपरा हमें विक्रम की 15वीं शताब्दी से निरंतर प्राप्त होती है। ऐतिहासिक वीरकाव्यों पर तो डिंगल का जैसे एकाधिकार ही हो।

वीरगाथाकालीन हिन्दी ऐतिहासिक वीरकाव्यों की प्रामाणिकता के बारे में अद्यावधि विवाद चल रहा है और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा निर्दिष्ट अधिकतर रासो ग्रन्थ बहुत बाद की रचना प्रमाणित किए जा चुके हैं। परन्तु डिंगल के उस युग के वीरकाव्य-ग्रंन्थों के विषय में किसी प्रकार का विवाद नहीं है। विक्रम की 15वीं शताब्दी में रचित ढाढी बादर का "वीरमायण" डिंगल का प्राचीनतम ऐतिहासिक वीरकाव्य माना जाता है। वैसे इस ग्रंथ के प्राप्त रूप में भी प्रक्षिप्त अंश विद्यमान है, परन्तु मोटे तौर पर इसका मूल रूप 15वीं शताब्दी के मध्य की रचना है।

प्राचीन मूल रूप में उपलब्ध डिंगल वीरकाव्य की सुन्दर कृति "रणमल्ल छंद" संवत् 1455 के लगभग श्रीधर कवि द्वारा रचित काव्य-ग्रंथ है। डिंगल भाषा के ओजस्वी रूप एवं ऐतिहासिकता से परिपुष्ट यह कृति राजस्थानी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसी शताब्दी की एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्यकृति शिवदास गाडणकृत "अचलदास खीची री वचनिका" है। इसमें गागरोण गढ के शासक अचलदास खीची का मांडू के सुल्तान के साथ युद्ध एवं राजपूत रमणियों के जौहर का सजीव ऐतिहासिक वर्णन है।

विक्रम संवत् 1512 में नागर ब्राह्मण कवि पद्मनाभ ने जालोर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित "कान्हड़ दे प्रबंध" काव्य ग्रंथ

का प्रणयन किया । जालोर के सोनगरा शासक कान्हड़देव के अद्भुत शौर्य से संबंधित इस काव्यग्रंथ में तत्कालीन इतिहास, साहित्य, भाषा, समाज और सांस्कृतिक विशेषताओं का उन्मेष, कवि की बहुज्ञता का प्रतीक है ।

सोलहवीं शताब्दी में इसके अतिरिक्त सं. 1538 में भांडउ व्यास (भावकलश?) रचित "राव हमीरदेव चौपाई" या "हमीरायण" काव्यकृति दूहा, गाहा, चौपई, आदि 321 छन्दों से रणथम्भोर के चौहान वीर हम्मीर के वीरत्व, स्वाभिमान एवं अलाउद्दीन खिलजी के साथ उसके युद्ध एवं निधन की ऐतिहासिक घटनावली का विस्तृत वर्णन करने वाली महत्त्वपूर्ण कृति है । सोलहवीं शताब्दी से इसके अतिरिक्त और भी कई छोटी-मोटी रचनायें उपलब्ध होती हैं, किन्तु काव्यत्व की दृष्टि से वे उतनी उत्कृष्ट कोटि की नहीं हैं । बीकानेर के राव जैतसी के विषय में कुछ ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य अवश्य प्राप्त होते हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । इनमें से प्रमुख हैं बीठू सूजाकृत "राव जैतसी रो छन्द"।

सत्रहवीं शताब्दी में जैन कवि हेमरतन कृत "गोरा बादल पद्मिणी चउपई" दस खण्डों में निबद्ध ऐतिहासिक काव्यकृति है । इसमें अलाउद्दीन खिलजी से महाराणा रतन सिंह व गोरा-बादल के भयंकर युद्ध का सजीव चित्रण है । महाराजा रतनसिंह और उनके रणबांकुरों के वीरगति प्राप्त होते ही पद्मिनी सहित सोलह हजार वीरांगनाओं ने जौहर की धधकती ज्वाला में अपने आपको झोंक कर इतिहास को दीप्तिमान किया । इसी कालाबोध में बीठू मेहा ने 'पाबूजी रा छन्द' और 'गोगाजी रा रसावला' कृतियों का प्रणयन किया ।

इस शताब्दी के ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्यों में ईसरदास बारहठ प्रणीत "हालां झालां री कुंडलियां" उत्कृष्ट वीर-रसात्मक काव्यग्रंथ है । इसी शती की अन्य रचनाओं में झूलणा छंद में रचित माला सांदू के तीन झूलणा, मेहा बीठू के तीन काव्य ग्रंथ, दुरसा आढा के "विरुद छहत्तरी" सहित सात काव्यग्रंथ एवं महाकवि केशवदास गाडण कृत "गुजगुण-रूपक-बंध" तथा जाडा मेहड़ु ग्रंथावली वीर-रसात्मक प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं । वस्तुतः यह शताब्दी वीर रसात्मक काव्य ग्रंथों के निर्माण की दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी की गौरवमय

उपलब्धि की ठोस आधार-भूमि है । ऐतिहासिकता एवं डिंगल भापा के प्रौढ़ रूप की दृष्टि से यह युग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

अठारहवीं, उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथों के प्रणयन की दृष्टि से डिंगल-साहित्य का स्वर्णयुग है । इस युग में रचे गए महान् काव्य ग्रंथों में शौर्य एवं वीरत्व के एक से एक अनूठे चित्र, दिव्यगुण-संपन्न वीर पुरुषों की क्रिया-प्रतिक्रिया की अनूठी झलक तथा शृंगार एवं वीररस का अद्‌भुत समन्वय है । इन ऐतिहासिक चरित-काव्यों से डिंगल-साहित्य का सर्वांगीण सौष्ठव मुखरित हो उठा है । इतिहास और काव्य, भाव एवं भापा, रस एवं शैली सभी दृष्टियों से ये ग्रन्थ साहित्य-सिन्धु के वे रमणीय रत्न हैं—जिनकी आभा अत्यन्त उज्ज्वल और अनुपम है । इन काव्य-ग्रंथों में डिंगल-साहित्य की पूर्ण मौलिकता, मर्यादा एव महानता निहित है । फलस्वरूप राजस्थान का चारण-काव्य अनुकरणीय एवं प्रेरणास्पद बन सका है । इस युग में एक ओर अनेक ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक महापुरुपों की जीवनी लेकर जनमानस को आन्दोलित करने वाले दैविक आख्यान रचे गये तथा दूसरी ओर तत्कालीन नरेशों एवं कवियों के आश्रयदाताओं के वीरतापूर्ण कृत्यों एवं प्रजापालनार्थ किए गए महान् कार्यों का लेखा-जोखा करने वाले चरित-काव्यों का प्रणयन किया गया ।

इस युग में रचे गए ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में प्रथम कोटि में वे काव्यग्रन्थ आते हैं जिनमें पाबूजी, रामदेवजी, गोगाजी, जांभाजी, तेजाजी, जसनाथजी, मल्लिनाथजी आदि लोकदेवताओं की महिमा वर्णित है । दूसरी कोटि में आने वाले काव्य-ग्रन्थों में रासो-परम्परा में लिखे गये बिन्हैरासो, खुमाणरासो, सत्रुपालरासो, सगतसिंघरासो तथा चरित-काव्यों की परम्परा में लिखे गये महान् ग्रन्थ राजरूपक, सूरजप्रकास, सोढायण आदि हैं ।

इन काव्यग्रन्थों में इतिहास एवं कल्पना के मेल से विषयवस्तु को अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं सजीव बना दिया गया है । कल्पना का पुट तो केवल उतना ही है जितना काव्य की कमनीयता की वृद्धि के लिए आवश्यक है और शेष आधारभूत तथ्य इतिहास-सम्मत है । अभी तक हिंदी के विद्वानों में यह भ्रम बना हुआ है कि

सारे के सारे ग्रन्थ अतिरंजना-पूर्ण एवं ऐतिहासिक तथ्यों से हीन हैं, परन्तु इधर जो शोधकार्य इन ग्रन्थों पर हुआ है, उससे यह तथ्य सामने आया है कि इन ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्यों की अधिकतर घटनाएँ इतिहास-सम्मत एवं प्रामाणिक हैं । "बिन्हैरासो" में उज्जयिनी-युद्ध, धौलपुर-युद्ध एवं वाराणसी-युद्ध की घटनाओं का वर्णन है, "अजीत विलास" में राठौड़ों के पूर्व पुरुषों के विस्तृत वर्णन के साथ महाराजा जसवन्तसिंह एवं महाराजा अजीतसिंह के शासन-काल का ऐतिहासिक वर्णन है । यह ग्रन्थ जीर्ण-शीर्ण दशा में प्राप्त हुँ, फिर भी इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर घटना की तिथि और वार का जो तांता लगा हुआ है उसके कारण इसका महत्त्व है ।

राजरूपक और सूरजप्रकास इस युग के ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में उल्लेखनीय हैं । राजरूपक तो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही क्योंकि इसमें तिथिक्रम से समस्त वर्णन प्रामाणिक हैं । "सूरजप्रकास" में यद्यपि तिथियों का अधिक उल्लेख नहीं है फिर भी उस युग की घटनाओं का प्रामाणिक वर्णन इसमें उपलब्ध है । चिमनजी कविया कृत "सोढ़ायण" में सोढ़ा राजपूतों की उत्पत्ति एवं उनके राज्यकाल का ब्यौरेवार एवं प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इस युग में ऐतिहासिक खण्डकाव्यों में खिड़िया जग्गा कृत "वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री" अत्यन्त प्रामाणिक एवं उल्लेखनीय कृति है । इसमें वीरशिरोमणि राठौड़ रतनसिंह द्वारा धरमत के युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राण दे देने का ओजपूर्ण एवं प्रामाणिक वर्णन है ।

साहित्यिक दृष्टि से इस युग के काव्यग्रन्थ वीरत्वपूर्ण वातावरण के मध्य रणोन्मत्त वीरों की उत्साहवर्द्धक उक्तियों के पारावार हैं, जिनमें अनेक अनुभावों, संचारी भावों, उद्दीपनों आदि के द्वारा वीरत्व की वह प्राणदायिनी छटा प्रकट हुई है जिसे पढ़कर पाठकों के हृदय में उत्साह का सागर हिलोरें लेने लगता है । वीररस का जैसा परिपाक डिंगल के इन ग्रन्थों में हुआ है, वैसा उत्कृष्ट रूप अन्यत्र दुर्लभ है । इस दृष्टि से राजस्थान का डिंगल-साहित्य न केवल भारतीय

बल्कि समूचे विश्व-साहित्य में अपने ढंग का नवीन और निराला साहित्य है ।

डिंगल के वीरकाव्यों से वीररस के सहयोगी रौद्र, बीभत्स एवं भयानक रस की छटा भी सर्वत्र विद्यमान है, रूपकों की ऐसी सुन्दर छटा सर्वत्र लक्षित होती है जिसे पढ़ते-पढ़ते सारा बिम्ब नेत्रों के सामने अंकित हो जाता है । कवियों ने अनूठे शब्द-चयन एवं उर्वर कल्पना से नाद-सौन्दर्य के गद्यात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं । इन वीर-काव्यों में सामान्य नारी-शृंगार-निरूपण के साथ विशेष रूप से सती के बाह्य साज-शृंगार का प्रत्यक्षदर्शी वर्णन मिलता है । प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में भले ही वे लोक-देवताओं की स्तुति में लिखित काव्य हों अथवा राजवंश की गौरव-गाथा सम्बन्धी चरित-काव्य हों इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं । करुण-रस-चित्रण इन प्रबन्ध-काव्यों में बहुत कम मात्रा में हुआ है, क्योंकि जहाँ मरण को पर्व मानकर सतियाँ सोलह शृंगार कर गाजे-वाजे सहित अग्नि-स्नान करती हों वहाँ करुण रस के लिए अवकाश कहाँ? फिर भी कहीं-कहीं मानव-मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ परिस्थिति-जन्य करुण भाव का उद्रेक अवश्य हुआ है । शान्त रस की अपेक्षाकृत अधिक व्यंजना इन काव्यों में मिलती है ।

रस-व्यंजना के अतिरिक्त इन प्रबन्ध-काव्यों में वस्तु-वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट एवं विशद रूप से उपलब्ध होता है । वंश-वर्णन, सेना-प्रस्थान-वर्णन, हाथी, घोड़ों एवं ऊँटों का वर्णन, योद्धाओं का वर्णन और युद्ध-वर्णन इन काव्यों में स्थल-स्थल पर विद्यमान है । इन नानाविध विशद वर्णनों में काव्य-तत्त्व तो कुशलता से उभारा ही गया है, इतिहास-तत्त्व भी कहीं दबने नहीं पाया है । युद्ध-वर्णन में युद्धरूपकों की बहुलता डिंगल कवियों की कल्पना-शक्ति एवं बिम्ब-चित्रण के अनूठे कला-कौशल को प्रकट करती है । बीसों प्रकार के रूपक युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में दिये गये हैं । इन वर्णनों में सबसे विशेष बात है—युद्ध में भी शृंगारिक दृष्टि । प्रायः सभी प्रमुख काव्यों में युद्ध-वर्णन करते समय मारकाट के क्रिया-कलाप की उपमाएँ शृंगारिक रूप में दी गई हैं । वीर, रौद्र, और शृंगार रसों का अद्‌भुत समन्वय डिंगल वीरकाव्यों की महती विशेषता

है । युद्ध की क्रियाओं में यह श्रृंगारिक दृष्टि राजस्थान के वीरत्पवपूर्ण संस्कारों का ही परिणाम है । युद्ध-वर्णनों के अतिरिक्त प्रायः सभी प्रकार के सामाजिक प्रसंगों के वर्णन इन काव्य-ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं ।

डिंगल-काव्य-ग्रन्थों में कवियों का अलंकारों के प्रति न तो विशेष आग्रह है और न उदासीनता । एक मात्र शब्दालंकार जिसके प्रति डिंगल कवियों का मोह-सा है और जिसका निर्वाह अनिवार्य रूप से किया गया है—वह है "वयण सगाई" । यह डिंगल काव्य का सर्वप्रिय अलंकार है । अन्य शब्दालंकारों में पुनरुक्त प्रकाश, यमक तथा वीप्सा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है । अर्थालंकारों का प्रयोग भी इन काव्य-ग्रन्थों की शोभा-वृद्धि में सहायक हुआ है । स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त ये अलंकार काव्यात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हुए रस-परिपाक में सहायक सिद्ध हुए हैं । इसके अतिरिक्त इन डिंगल-काव्य-ग्रन्थों में विपुल मात्रा में ऐसी सारगर्भित उक्तियाँ हैं जो युग-युग तक जनता की जिह्वा पर वर्तमान रहेंगी ।

भाषा की दृष्टि से भी यह युग डिंगल-साहित्य का उत्कर्ष-काल है । इस युग तक आते आते डिंगल भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो गई थी । उसमें प्रौढ़ता और परिष्कार आ गया था तथा इस युग के कवियों ने अपने महान् काव्यग्रन्थों में भावानुकूल तथा ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणयुक्त भाषा का उत्कृष्टतम रूप प्रस्तुत किया है ।

बीसवीं शताब्दी की राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण ऐतिहासिक वीरकाव्य-परंपरा शिथिल हो गई । अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति के आधार पर शासक-वर्ग को इस तरह जकड़ दिया था कि किसी को काव्य सुनने का अवकाश ही नहीं था । अतः सैकड़ों वर्षों की ऐतिहासिक वीरकाव्य-परंपरा इस शताब्दी तक आते-जाते काफी कुछ शिथिल हो गई । बून्दी के कविराज सूर्यमल्ल मिश्रण इस युग के प्रारंभ में अन्तिम महान् कवि हुए हैं । उनके "वंशभास्कर" में मध्यकालीन डिंगल ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्यों का गौरव और उत्कर्ष एक बार पुनर्जीवित हो उठा है । इसके अतिरिक्त उनकी "वीर सतसई" दूहों में वीर रस की उत्कृष्ट व्यंजना

करने वाली श्रेष्ठ कृति है ।

इस प्रकार राजस्थान की यह वीरकाव्य-परंपरा 11वीं शताब्दी से अविच्छिन्न रूप से चलती रही । वीर रस का ऐसा सांगोपांग चित्रण भारत के किसी भी साहित्य में दुर्लभ है । हिन्दी वीर काव्य की तुलना जब इस समृद्ध वीरकाव्य से की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में ऐसे इतिहाससम्मत, सजीव एवं प्रभावशाली वीरकाव्यो का सर्वथा अभाव है । वीर रस के हिन्दी काव्यग्रन्थ केशव का "वीरसिंह देव चरित", मान कवि का "राजविलास", भूषण का "शिवराजभूषण" लाल कवि का "छत्र प्रकास" एवं सूदन का "सुजान चरित" सूची-परिगणन, कृत्रिम भाषा-प्रयोग, एवं अतिरंजनापूर्ण वर्णनों की भरमार आदि दुर्बलताओं से तो बोझिल हैं ही, उनमें वीर रस की वैसी उत्कृष्ट व्यंजना भी नहीं है । हिन्दी वीरकाव्य निश्चित रूप से राजस्थानी वीरकाव्यों का निम्न स्तर का अनुकरण मात्र प्रतीत होते हैं । इन ग्रन्थों में कवि का लक्ष्य अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन ही रहा है एवं उन्होंने इन ग्रन्थों की रचना अपने ग्रन्थों के सूची-विस्तार अथवा अपने आश्रयदाता की रुचि की पूर्ति मात्र करने हेतु की है । अनुभूति के अभाव एवं अतिशयोक्ति के अन्धाधुंध प्रयोग ने इन रचनाओं को अत्यन्त शिथिल बना दिया है । इस प्रकार हिन्दी का वीरकाव्य, राजस्थानी वीरकाव्य की तुलना में कहीं ठहर ही नहीं सकता है ।

कविया करणीदान-जीवनवृत्त

कविया करणीदान जैसे वीर रस के उद्‌भट कवि की जीवनी के विषय में कविराजा श्यामलदास कृत "वीरविनोद" के संक्षिप्त वर्णन के अतिरिक्त और कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। अपने विषय में न तो कवि ने स्वयं ही अपने ग्रन्थों में कुछ उल्लेख किया है, न समकालीन अथवा बाद के किसी ग्रन्थ में, सिवाय युद्ध विषयक प्रसंग में उनके नामोल्लेख के, और कोई जीवनीसंबंधी विवरण उपलब्ध है। इस कारण कवि के जीवनवृत्त संबंधी प्रामाणिक तथ्य प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर बन गया है। अतः जनश्रुतियों एवं मुख्य रूप से उनके वंशजों से प्राप्त मौखिक तथ्यों के आधार पर ही उनके जीवन की विकास-रेखाओं को अंकित किया जा सकता है।

"वीरविनोद" के अनुसार वे मेवाड़ के सूलवाड़ा ग्राम के निवासी थे। कर्नल जेम्स टॉड ने उनका जन्म-स्थान कन्नौज माना है किन्तु चारणों के बहीभाट एवं कवि के वंशजों ने उनका जन्म-स्थान आमेर रियासत (वर्तमान जयपुर) का डोगरी ग्राम बताया है। यह डोगरी ग्राम कवि के पूर्वज श्री डूंगरसी को मिर्जा राजा मानसिंह ने प्रदान किया था।

कवि के पिता का नाम विजयराम और उनके दादा का नाम प्रागदान था। "सूरजप्रकास" के प्रारंभ में कवि ने इसका उल्लेख किया है। "सूरजप्रकास कविया करणीदान विजैरांमोतरो कह्यौ"। उनके पिता विजयराम भी श्रेष्ठ कवि और मान्य व्यक्ति थे। बीकानेर के राजकुमार पदमसिंह ने वि. सं. 1739 चैत्र कृष्णा द्वादशी को ताप्ती के युद्ध में सांवतराम और जादूराम मराठों को मारकर वीरगति प्राप्त की, इससे संबंधित एक डिंगल गीत विजयराम जी का प्राप्त हुआ है। इसमें कुंवर पदमसिंह के युद्ध में रणकौशल दिखा कर स्वर्ग सिधारने का उल्लेख है—

सत्र धड़ दुलहृणि मांन संपूरण, स्रगपुर दिसि स्रोवन सदम ।
चढ़ि हालियौ विमांनै चौरंगि, पदमणि अपछर वर पदम ।।

अर्थात् शत्रुओं की सेना रूपी दुलहिन का संपूर्ण रूप से उपभोग (शत्रुओं की सेना का संपूर्ण रूप से नाश) कर पदमसिंह ने स्वर्ग की ओर, विमान से प्रस्थान किया और वहाँ पद्मिनी अप्सराओं का वरण किया ।

विजयराम डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओं के सिद्धहस्त कवि थे । उनकी रचनाओं से उनकी धर्मनिष्ठा एवं भक्तिप्रवणता का भी पता चलता है । उनके गीत उनके जीवनकाल में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके थे । किसी समकालीन कवि ने उनके गीतों की श्लाघा करते हुए कहा है –

सवैया कविया श्याम रा, विजयराम रा गीत ।
परवरिया सारी प्रथी, ऊगे ज्यां आदीत ।।

करणीदान की माता का नाम इतियाबाई था । "इतिया मन आणंद पाई करणा पूत सूं" काव्यपंक्ति प्रसिद्ध है । उनके वंशजों के कथनानुसार कवि की बहन ब्रजबाई भी अत्यन्त विदुषी एवं अच्छी कवयित्री थी । उनके दो विवाह हुए थे । बड़ी पत्नी टहले वाली एवं छोटी झुड़िया ग्राम की थी । बड़ी पत्नी से अनोपराम एवं रामदास तथा छोटी पत्नी से एक पुत्र लच्छीराम थे । अनोपराम उनके पाटवी पुत्र थे । कवि के वंशज आज भी आलावास ग्राम में निवास करते हैं एवं यह ग्राम उनको कविया करणीदान से ही विरासत में जागीर स्वरूप प्राप्त हुआ था ।

कवि युवावस्था में शाहपुरा, डूंगरपुर, उदयपुर में रहे एवं अन्त में जोधपुर आकर स्थायी रूप से बस गये । सभी नरेशों ने उनकी कविता पर प्रसन्न होकर उनका अत्यधिक सम्मान किया । उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने तो उनके गीतों का मंत्र की भांति पूजन भी किया । महाराजा अभयसिंह एवं रामसिंह के पश्चात् जोधपुर का शासन बखतसिंह के हाथ में आने पर कवि किशनगढ़ चले गये एवं वहीं उनका स्वर्गवास हुआ । कुल मिलाकर इतने तथ्य उनके जीवन के संबंध में उपलब्ध हैं, परन्तु उनके जीवन की अन्य

घटनायें जो उनके वंशजों से प्राप्त हुई उनके आधार पर कवि के जीवनवृत्त का रोचक विवरण प्राप्त होता है ।

कविया करणीदान के बाल्यकाल के विषय में उनके वंशजों से प्राप्त एक घटना के अतिरिक्त और कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है । इस घटना के अनुसार डोगरी ग्राम के पास पहाड़ की एक गुफा में हांडी भडंग संप्रदाय के एक साधु तपस्या करते थे । उनकी सेवा में मोतीसर जाति का एक व्यक्ति मोतिया रहता था । अपनी टट्टुवानी (घोड़ी) से आस-पास के गाँवों में जाकर थोड़ा-बहुत कार्य संपादन कर वह अपना जीवन-यापन करता था । एक दिन वह टट्टुवानी काल का ग्रास बन गई । मोतिया महात्मा के सम्मुख अत्यन्त उदास भाव से बैठा था । महात्मा के द्वारा उसकी उदासी का कारण पूछने पर उसने बहुत निराशाभरे शब्दों में कहा, "महाराज मैं अपनी टट्टुआनी से आस-पास के ग्रामों में जाकर किसी तरह गुज़र-बसर कर आपकी बंदगी करता था । आज गुज़र-बसर करने का वह आश्रय ही टूट गया ।" महाराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "चिन्ता मत कर । चल तुझे डोगरी के ठाकुर से एक टट्टुवानी दिला दूँगा । उसके पास कई टट्टुवानियाँ हैं ।"

महात्माजी मोतिया को लेकर डोगरी ग्राम आये, और वहाँ के ठाकुर, से जो करणीदान के काका होते थे, कहा— "तेरे पास आठ-दस टट्टुवानियाँ हैं । मेरे मोतिया की टट्टुवानी मर गई है । एक टट्टुवानी उसे दे दे ।" इस पर ठाकुर ने उत्तर दिया, "महाराज मेरी कोई टट्टुवानी हजार रुपये से कम की नहीं है । आप और कोई हुकम फरमावो, मैं उसकी तामील कर दूँगा ।" महाराज को इस पर बहुत क्रोध आया और वे उनकी सभी टट्टुवानियों को मरने का शाप देकर रवाना हो गये । करणीदान जी उस समय अपने काका के पास बैठे थे । वे तुरन्त महाराज के पीछे-पीछे गये और कुछ दूर जाकर महाराज के पाँव पकड़ लिए । कहने लगे, "महाराज क्रोध मत कीजिए, क्षमा करें, मेरे पास एक टट्टुवानी है । मोतिया के लिए वह मैं आपको नज़र करता हूँ ।" महाराज ने प्रसन्न होकर टट्टुवानी मोतिया को दिलाते हुए कहा, "जा बच्चा, आज से तेरा प्रताप खूब बढ़ेगा ।

तू इसी समय डोगरी ग्राम छोड़ कर चला जा । तेरी टटुवानी जिस रंग की है उस रंग का घोड़ा तुझे आज ही मिल जाएगा । महाराज ने अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया और करणीदान जी ने डोगरी ग्राम छोड़ने का निश्चय कर लिया ।

करणीदान उसी दिन बिना किसी साधन के घर छोड़कर पाडे (भैंसे) पर थोड़ा बहुत सामान लादकर रवाना हो गये और डोगरा ग्राम पहुँचे । वहां के राजपूत सरदारों ने उन्हें टोका, "आप राजपूतों के पूज्य होते हुए पाडे पर सामान लाद कर कहाँ जा रहे हो? यह तो राजपूत जाति का सरासर अपमान है । हम आपको घोड़ा भेंट करते हैं । आप ससम्मान प्रस्थान कीजिए ।" करणीदानजी ने घोड़ा सहर्ष स्वीकार कर लिया । किंवदन्ती है कि घोड़ा महात्माजी के कथनानुसार उसी रंग का था जैसी उनकी टटुवानी ।

वहाँ से प्रस्थान कर वे खंगारतों के सेवा नामक ठिकाने में आये । वहाँ के ठाकुर सुल्तान सिंह ने इनकी कविता पर प्रसन्न होकर रथ, घोड़ी, नौकर आदि उन्हें भेंट में दिए । कवि द्वारा छोटी अवस्था में रचित सर्वप्रथम छंद इसी समय का उपलब्ध होता है । निम्नलिखित मनहर कवित्त में उनकी कवित्व-शक्ति के प्रारंभिक दर्शन होते हैं ।

> पातर परी सी नटनी-सी नृताकारिणी सी,
> हरिणी सी चतुर, हरायनी हरिण तें,
> उच्छट अमीर की सी, तुरताई तीर की सी,
> लहर समीर की सी, ताई है तरण तें ।
> छटक छटा-सी, पुनि तारस छना सी छुटि,
> अपि सुलतान सिंह रीझ के रमण तें ।
> मंपि गज बीस भौम, झंपि असवार होत
> कंपि मन वासग के, चंपि के चरण तें ।

(ठाकुर सुलतान सिंह ने मेरी कविता पर प्रसन्न होकर जो घोड़ी प्रदान की है वह परी के सदृश कमनीय, नटिनी के सदृश नृत्य करने वाली, हरिणी के समान चतुर, हरिण के सदृश चंचल, अमीर के सदृश छटा वाली, तीर के समान त्वरित गतिवाली, पवन के झोंको के सदृश

लहराती हुई, सूर्य के समान चमक वाली, अद्वितीय छटा के समान लुभावनी एवं बिजली के समान गतिवाली है । वह अपनी एक कूद से बीस गज भूमि नाप लेती है और जब आरोही तेजी से सवार होकर उसे दौड़ाते हैं तो उसके खुरों की ध्वनि से पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग का हृदय भी काँप उठता है ।)

सेवाग्राम से चलकर वे आमेर आये । कवि के वंशजों के अनुसार आमेर में उनका अधिकांश समय भाषा एवं साहित्य के अध्ययन में बीता । वहाँ उन्होंने संस्कृत, प्राकृत एवं प्राचीन डिंगल के ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन किया एवं प्राचीन साहित्य के चिन्तन-मनन द्वारा अपनी काव्यप्रतिभा को तराशने का कार्य संपादित किया । वे कितने वर्षों तक आमेर रहे, इसका सही संकेत नहीं मिलता, परन्तु आभास होता है कि युवावस्था प्राप्त कर ही उन्होंने आमेर से प्रस्थान किया ।

उनकी युवावस्था की कुछ प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख उनके वंशजों ने किया । आमेर से प्रस्थान कर वे शाहपुरा (जिला- भीलवाड़ा) के सीमावर्ती ग्राम में पहुंचे । वहां उन्होंने खेत पर काम करते एक किसान से पूछा—"क्या शाहपुरा के उम्मेदसिंह की सरहद यहीं से शुरू होती है ?" किसान ने उनकी ओर आश्चर्य से देखा और बोला, "लगता है तुम शाहपुरा में नये-नये आ रहे हो, इसी कारण महान् प्रतापी कुंवरजी को तुमने रेकारा (नाम का असम्मानजनक उच्चारण) दिया है । परन्तु आगे कभी भूलकर भी उन्हें रेकारा मत देना । ऐसे असम्मानजनक संबोधन देने वालों का वे निःसंकोच सिर काट देते हैं ।" करणीदानजी ने निर्भय होकर कहा, "ऐसी बात है तो मैं उनके सामने एक बार नहीं अनेक बार उम्मेदसिंह नहीं उम्मेद और उम्मेदिया कह सकता हूँ ।" किसान आश्चर्य से उनके निडर व्यक्तित्व को देखता रह गया और बोला, "यदि तुम उन्हें रूबरू "रेकारा" दे दो तथा जीवित बच जाओ तो मैं अपनी समस्त भूमि 20 हल की भूमि (एक हल भूमि 50 बीघे की होती है) तुम्हें दे दूंगा ।"

अस्तु, किसान करणीदानजी को लेकर कुंवर उम्मेदसिंह की सेवा

में पहुँचा । कुंवर उम्मेदसिंह उन दिनों एक शक्तिशाली राजकुमार के रूप में विख्यात थे । उन्होंने अपने पिता भारतसिंह को, अक्षम होने के कारण, राज्यच्युत करके समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिए थे । सारे राजस्थान में उनकी जबरदस्त धाक थी । करणीदान जी ने कुंवर को लक्ष्य कर कुछ दोहे कहे जिनमें प्रत्येक दोहे में उम्मेदसिंह की वीरता की प्रशंसा होते हुए भी आत्मीयतापूर्वक उन्हें रेकारा दिया गया था ।

ओठी वहै उतावळा, भडा न पायो भेद ।
आज किसा गढ़ ऊपरे, आरंभ सजे उमेद ।।
घोड़ा पाखर घमघमै, भंडा न पायो भेद ।
आज किसा गढ़ ऊपरै, आरंभ सजे उमेद ।।
गोळा गावे गीत, राग सुणावे राण नै ।
भारत रो भड़भीत, आछो लड़ै उमेदियो ।।
काल नदी वहसी किता, बीदग कहसी बत्त ।
भारथ तणा उमेदिया, (तू) रहसी राणावत्त ।।

(सजे हुए ऊँट उतावले होकर प्रस्थान कर रहे हैं, योद्धाओं तक को तुम्हारे आक्रमण का भेद ज्ञात नहीं है । हे "उमेद" आज किस गढ़ पर आक्रमण करने की तैयारी है ?

घोड़े कवचों से सुसज्जित होकर शोर कर रहे हैं, योद्धा भी इसके रहस्य से परिचित नहीं है । हे उमेद ! आज किस गढ़ पर आक्रमण की तू तैयारी कर रहा है ।

भारतसिंह के पुत्र हे "उमेदिया" तूने युद्ध में ऐसे शौर्य का प्रदर्शन किया कि राणा जिनकी ओर से लड़ रहा है, उनके कानों में युद्ध-क्षेत्र में तोपों से निकलने वाले गोलों की संगीतमय ध्वनि गूंज रही है ।

काल की इस नदी में न जाने कितने विनष्ट हो जायेंगे, चारण कवि उनकी बातें सुनाते रहेंगे, पर भारतसिंह के पुत्र "उमेदिया" तू अपने युद्धकौशल के कारण अमर रहेगा ।)

कुंवर उम्मेदसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुए । सिंहासन से उतर कर युवा कवि को गले लगा लिया । बेचारा किसान भौंचक्का रह

गया । उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "कुंवर जी ! क्या आपने "रेकारा" देने वाले का सिर काटने का प्रण मेरा धन गंवाने हेतु ही किया था? इस कवि ने आपको बार-बार "रेकारा" दिया, फिर भी आपने प्रसन्न होकर सम्मानित किया और गले लगाकर सम्मान प्रदान किया । मैं तो आपके वचनों पर विश्वास कर सब कुछ गंवा बैठा ।" कुंवर उम्मेदसिंह मुस्कराये । प्रत्युत्पन्नमति करणीदान जी ने तुरन्त उसकी पत्नी को अपनी बहिन बनाकर "काँचली" (बहिन को दी जाने वाली भेंट) में सारा धन उसे लौटा दिया ।

अपने जीवनकाल में कविया करणीदान एक बार फिर शाहपुरा आये थे । तब राजकुमार उम्मेदसिंह अपने पिता की मृत्यु के बाद, राजा बन चुके थे । उन्होंने कवि को सम्मानित करने हेतु घोड़ा-सिरोपाव उनके ठिकाने पर भिजवाया । कवि तब तक ख्याति-प्राप्त कविराजा बन चुके थे । उन्होंने घोड़ा-सिरोपाव को उपयुक्त न समझ कर ससम्मान लौटाते हुए निम्नलिखित गीत लिख भेजा —

डाकर अत डकर करे मत डारण, सीसोदा पग मांड सधीर ।
चाल पकड़ लेऊँ तो चारण, वारण तो वोढा नरवीर ।।
काची बात न जांणै कवनै, छाती सधर शाहपुरा छात ।
केंकाणा पर निजर धरै कुण, हाथी बिगर न मांडू हाथ ।।
नृपत उमेदा सकव डर नहीं, कूड़ी होय तो सुनै किरणाल ।
चवड़े मूझ धके तूं चड़सी, पड़सी खबर पछे प्रतपाल ।।
लाखां बात टलै न लिखियौ, असुभ सुभ जो हाथ अलेख ।
छत्रपत विरदां तुं ही न छोड़े, टुंकियक हुं इ धारियां टेक ।।

भाव यह है कि हे सीसोदिया! उम्मेदसिंह शाहपुरा जैसी प्रसिद्ध रियासत का राजा तब तूँ अपनी आन और शान को कायम रखे हुए है तो मैं भी चारण हूँ । जो हठ मैंने ठान ली है उसे मैं छोड़ने को तैयार नहीं हूँ । मैं तेरे द्वारा प्रदत्त घोड़ा-सिरोपाव की ओर आँख उठाकर भी देखने को प्रस्तुत नहीं हूँ । बिना हाथी-सिरोपाव के मैं तुम्हारी यह भेंट कभी स्वीकार नहीं करूँगा । जो भी भाग्य में लिखा होगा वह होकर ही रहेगा, परन्तु हे छत्रपति ! जब तू

ही अपनी शान एवं विरुद को छोड़ने को तैयार नहीं है तो मैं भी अपनी टेक पर कायम हूँ ।

राजा उम्मेदसिंह ने गीत पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न होकर कवि को हाथी-सिरोपाव, लाख पसाव तथा दो गांव सेवाना तथा सरदारपुरा देकर सम्मानित किया । शाहपुरा से उनका सम्बन्ध बहुत अधिक रहा । संवत् 1824 में उम्मेदसिंह ने मरहठों के विरुद्ध मेवाड़ी सेना का नेतृत्व करते हुए अद्भुत रण-कौशल का प्रदर्शन किया था एवं अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी । तब कविया करणीदान ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए "मरसिया" के रूप में कई गीत तथा दोहे कहे । इस अवसर पर उनके द्वारा कहा गया एक दोहा बहुत प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय है —

समन्दर पूछै सफ्फरां, आज रातंवर काह ।
भारथ तणै उमेदियो, खाग झकोली मांह ।।

अर्थात् समुद्र क्षिप्रा नदी के जल को रक्त से लाल देखकर आश्चर्य से पूछ उठता है, "हे क्षिप्रा! आज तुम्हारे जल में यह रक्तिमता क्यों है?" क्षिप्रा उम्मेदसिंह की शौर्यगाथा का बखान करती हुई कहती है कि भारतसिंह के पुत्रं उम्मेदसिंह ने शत्रुओं के रक्त से सनी तलवार को मेरे जल में "झकोला" (धोया) है, इसी कारण मेरा यह जल लाल वर्ण का हो गया है ।

इस प्रकार शाहपुरा से कविया करणीदान का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ रहा । अपने प्रारंभिक आश्रयदाता के रूप में वहीं रहकर कविया करणीदान ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया । उनके वंशजों के कथनानुसार एक विवाह-समारोह के अवसर पर, जोधपुर महाराजा अभयसिंह जी द्वारा आग्रह किये जाने पर, शाहपुरा नरेश ने ही उन्हें जोधपुर भिजवा दिया था ।

शाहपुरा से कविया करणीदान डूंगरपुर पहुंचे । वहाँ के तत्कालीन नरेश रावल शिवसिंहजी को भी उन्होंने अपनी कविता से प्रसन्न कर दिया । कवि ने रावल शिवसिंह की प्रशंसा में कई गीत व दोहे कहे । "वीरविनोद" के अनुसार उस समय का एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है —

बाबरिया छत्रपत बिया, की दाखूँ क्रामात ।
सिध जूना रावल सिवा, नमो गिरप्पुरनाथ ।।

अर्थात् दूसरे छत्रधारी (राजा) नये जोगी (छोटी जटा वाले) थोड़ी सी तपस्या के जोर से राजा बन गये उन्हें करामाती किस प्रकार कहूँ ? परन्तु पुराने तपस्वी (बहुत तपस्या करके राजा बनने वाले) रावल शिवसिंह तुमको मेरा प्रणाम है ।

रावल शिवसिंह ने प्रसन्न होकर उन्हें लाख पसाव देकर सम्मानित किया । कविया करणीदान वहाँ से उदयपुर आये । उस समय उदयपुर में महाराणा संग्रामसिहजी (द्वितीय) का शासन था । उनके वंशजों के अनुसार वे शाहपुरा नरेश के साथ एक विवाह-समारोह के अवसर पर उदयपुर गये । वहां जोधपुर, जयपुर, उदयपुर आदि अनेक रियासतों के राजकवि एकत्र हुए थे । सब कवियों ने अपनी अपनी रचनायें सुनाई । कविया करणीदानजी ने उदयपुर महाराणा की प्रशंसा में कई गीत कहे जिनमें एक दोहा निम्नलिखित भी था —

"डोलै नह दी डीकरी, नवरोजै निरमांण ।
हुआ न कोई होवसी, सीसोदिया समांन ।।

अर्थात् समस्त भारतवर्ष में सीसोदिया महाराणा के सदृश कोई भी तेजस्वी राजा महाराजा नहीं है, जिन्होंने मानरहित होकर अपनी पुत्री का डोला "नवरोजे" में बादशाह की सेवा में नहीं भेजा तथा जो स्वयं उनकी सेवा में कभी उपस्थित नहीं हुए ।

कहते हैं इस दोहे को सुन कर जोधपुर महाराजा अभयसिंह जी कवि की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए और विदा के समय शाहपुरा महाराजा से कविया करणीदान को मांग लिया । परन्तु वीर विनोद के अनुसार कविया करणीदान का कुछ समय तक उदयपुर निवास प्रमाणित होता है । इस ग्रन्थ में जिस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख किया गया है वह कविया करणीदानजी के व्यक्तित्त्व के साथ इतनी घुल मिल गई है कि वह आज भी चारण-काव्य-प्रेमियों को कंठाग्र है । घटना निम्नलिखित है—

कविया करणीदान जब महाराणा संग्रामसिंह जी (द्वितीय) से मिले तब उन्होंने सीसोदिया वंश की गौरव-गाथा एवं मेवाड़

महाराणाओं के पराक्रम की व्यंजना करने वाले चार-पाँच गीत सुनाये । गीतों को महाराणा ने मंत्रमुग्ध होकर सुना और वे कहने लगे, "कविराज, ये गीत नहीं बल्कि मन्त्र हैं, अतएव पूजनीय हैं । यदि आप स्वीकार करें तो मैं इनके लिए आपको लाख पसाव देकर सम्मानित करूँ अथवा यदि आप कहें तो मैं इनको चौखटे में मंढवा कर इनकी पूजा किया करूं ।" इस पर कविया करणीदान जी ने निवेदन किया, "हुजूर, लाख पसाव तो मुझको शाहपुरा दरबार उम्मेदसिंह जी ने तथा डूंगरपुर महारावल शिवसिंहजी ने भी दिए हैं और आगे भी देने वाले बहुत हैं । परन्तु आप आर्यकुल-कमल-दिवाकर हैं । आप तो इन गीतों की पूजा ही कीजिए । इससे बढ़कर मेरे लिए आत्म-संतोप की बात और क्या हो सकती है ।" महाराणा ने उन गीतों को मढ़वा लिया । वे नित्य इनका पूजन करने लगे । इसके अतिरिक्त महाराणा ने करणीदानजी को लाख पसाव देकर भी सम्मानित किया ।

उनके उदयपुर निवास की एक अन्य घटना उनके वंशज अत्यन्त स्वाभिमानपूर्वक सुनाते हैं । उनके अनुसार एक बार महाराणा कुछ सरदारों सहित पीछोला सरोवर में नौका विहार करने पधारे । बीच सरोवर में महाराणा ने कविया करणीदान से प्रश्न किया, "कविराज, यदि इस समय प्यास लगे तो तृषा कैसे शान्त होगी ?" करणीदान जी ने उत्तर दिया, "महाराणा साहिब ! हमारे पास ईश्वर का दिया हुआ कटोरा है, जिससे प्यास बुझाई जा सकती है ।" महाराणा ने फरमाया, "आप पीयें हम देखना चाहेंगे ।" करणीदान जी अंजलि भर कर पीने लगे । पीते समय अंजलि से पानी बाहों पर से होता हुआ कोहनी के पास से गिरने लगा । महाराणा ने उन बूंदों को "बूक मांड कर" (मुंह के पास अंजलि भरकर) पी लिया । इस पर पास बैठे सरदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने अर्ज किया, "महाराणा सा आप सहस मेवाड़ के धणी होकर चारण की चाल झूम गये ।" महाराणा ने उत्तर दिया, "चारणों की चाल तो राजपूत "झूंबते" (अंचल का अवलोकन करते) ही आये हैं, मैंने कौन सी अनहोनी बात कर दी ?"

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान के इतिहास एवं संस्कृति की यह गौरवशाली परंपरा रही है कि यहाँ राजा महाराजाओं ने कवियों एवं साहित्यकारों के सम्मान में अपने अभिमान को तिरोहित कर अत्यन्त विनम्रता से कार्य संपन्न किए हैं। इसकी साक्षी में इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। किसी शासक ने कवि की पालकी को कंधा देकर उसको घर तक पहुँचाया तो किसी नरेश ने प्रज्ञाचक्षु कवि की जूतियों को हाथ से उठा कर उन्हें पहनवाया, किसी ने कवि को गजारूढ़ कर स्वयं चंवर ढुलाया तो किसी ने कवि के द्वार पर जाकर उससे प्रसाद के रूप में भोजन ग्रहण करने में गर्व का अनुभव किया। इस प्रकार कविया करणीदान का सम्मान भी उसी महान् परंपरा में मेवाड़ महाराणा द्वारा किया जाना अपवादस्वरूप नहीं है।

उदयपुर में वे काफी समय तक रहे। उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) एवं महाराणा जगतसिंह दोनों को प्रशंसा में लिखे उनके गीत उपलब्ध हैं। उदयपुर में लम्बे समय तक रहने के बाद जोधपुर नरेश महाराजा अभयसिंहजी द्वारा मांगे जाने पर, शाहपुरा नरेश ने उन्हें जोधपुर भिजवा दिया। कविया करणीदान का अधिकांश जीवन जोधपुर में ही बीता। यहीं उन्होंने अपनी प्रतिभा, राजनीतिक सूझबूझ एवं शौर्य-प्रदर्शन द्वारा खूब ख्याति अर्जित की। कर्नल जैम्स टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में उनके विषय में अत्यन्त प्रशंसापूर्वक शब्दों में कहा है —

"करणीदान कविया जिस प्रकार से पहली श्रेणी के कवि थे, उसी प्रकार चतुर राजनीतिज्ञ, योद्धा और प्रगाढ़ पण्डित थे। प्रत्येक स्थिति में वह अपनी चतुरता का चूडान्त प्रमाण दिखाया करते थे। मारवाड़ के आत्म-विग्रह के समय प्रत्येक राजनीतिक घटना में उन्होंने प्रशंसनीय भूमिका अदा की है।"

टॉड ने और अनेक प्रसंगों में कविया करणीदान का उल्लेख, अपने इतिहासग्रंथ में किया है, किन्तु टॉड ने एक बड़ी भारी भूल कर दी है। उन्होंने कविया करणीदान और बारहठ कवि करणीदान (मूंदयाड़ ठाकुर) से संबंधित घटनाओं को भ्रमवश मिला दिया

है । उदाहरणार्थ-महाराजा अजीतसिंह की पुत्री इन्द्रकंवर को बादशाह फर्रुखसियर के साथ विवाह हेतु दिल्ली ले जाने वालों मे कविया करणीदान न होकर मूंद्याड़ ठाकुर करणीदान थे, उन्होंने भी उस समय की राजनीति में प्रमुख भाग लिया था ।

जोधपुर में ही उन्होंने अपने प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य ग्रंथ "सूरजप्रकास" का प्रणयन किया । उन्होंने महाराजा के साथ अनेक युद्धों में सक्रिय भाग लिया तथा शौर्य का प्रदर्शन किया । उनके जोधपुर-प्रवास एवं उनके व्यक्तित्व संबंधी महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय अनेक लोकप्रचलित आख्यानों एवं हस्तलिखित ख्यातों में मिलता है । उनमें से कुछ घटनाओं, जो उनके व्यक्तित्व पर सम्यक् प्रकाश डालती हैं, का उल्लेख किया जाता है ।

एक प्रसिद्ध घटना उनके पुष्कर में अपने आश्रयदाता महाराजा अभयसिंह एवं आमेरनरेश महाराजा जयसिंह के मिलन के समय की है । दोनों महाराजाओं की आपसी वातचीत के समय कविया करणीदान उपस्थित थे । आमेरनरेश जयसिंह ने कहा, "कविराज, आप तो श्रेष्ठ कवि हैं, कुछ हम दोनों के संवंध में भी कहिये ।" करणीदान ने बहुत से दोहे दोनों राजकुलों की प्रशंसा में कहे परन्तु वे दोनों राजकुलों की भर्त्सना करने से भी नहीं चूके । एक दोहे में जयपुर नरेश द्वारा राज्य के लोभ में अपने पुत्र महाराजकुमार शिवसिंह एवं जोधपुर नरेश के छोटे भाई वखतसिंह द्वारा अपने पिता महाराजा अजीतसिंह की हत्या करने के लिए दोनों की भर्त्सना की गई थी । दोनों परिवारों की इस कलंकगाथा को इतनी निडरता से कहने का साहस कविया करणीदान सरीखे निर्भीक एवं निडर कवि में ही हो सकता था । दोहा इस प्रकार है —

पत जैपुर जोधांण पत, दोनूं थाप उथाप ।
कूरम मार्‌यौ डीकरौ, कमधज मार्‌यौ बाप ।।

अर्थात् जयपुरनरेश और जोधपुरनरेश दोनों का क्या कहना? दोनों एक दूसरे से कम नहीं हैं, क्योंकि कूरम (कूर्मवंशीय) ने तो लोभवश अपने पुत्र की हत्या कर दी, तो कमधज (राठौड़ नरेश) ने अपने पिता को मार डाला ।"

दोनों नरेशों के मुँह पर उनके परिवार से संबंधित कटु सत्य इतनी निर्भीकता एवं स्पष्टता के साथ कहने का साहस कविया करणीदान को ही हो सकता था । चारण कवियों पर चाटुकारिता एवं अपने आश्रयदाता की अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा करने का जो आरोप लगाया जाता है उन आलोचकों के लिए यह प्रसंग आँख खोलने वाला है ।

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने अपने लेख में इस घटना का उल्लेख करते हुए महाराजा अभयसिंह की प्रतिक्रिया भिन्न रूप में अंकित की है । उन्होंने लिखा है, "जयपुर महाराजा जयसिंहजी बड़े राजनीतिज्ञ थे, हंस कर बात टाल दी पर अभयसिंह जी आग बबूला हो गये । तलवार की मूँठ पर हाथ रखते हुए बोले, "कविराज, कोई दूसरा होता तो इसी वक्त सिर काट डालता । आप जाइये! मैं आपका मुँह नहीं देखना चाहता ।" करणीदानजी ने तुरन्त वहाँ से प्रस्थान करते हुए कहा, "महाराज ! यदि मैं सच्चा कवि हुआ तो आप मेरे पैरों पर झुकेंगे ।" कवि ने अपने वचनों को थोड़े ही दिनों में सत्य कर दिखाया । उन्होंने महाराजा अभयसिंह एवं सरबुलन्द खां के अहमदाबाद युद्ध का वर्णन अपने ग्रंथ में इतना सजीव किया कि जो सुनता, फड़क उठता । सरवुलन्द खां के साथ युद्ध में मारवाड़ी योद्धाओं और महाराजा अभयसिंहजी की वीरता का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा कि सुनने वाले मुग्ध हो गये । महाराजा ने भी प्रशंसा सुनी । वे कवि के मुख से काव्य-श्रवण का लोभ संवरण नहीं कर सके । परन्तु उन्हें अपने शब्द याद थे - "तुम्हारा मुख नहीं देखूँगा ।" अतः उन्होंने कवि को बुलवा कर काव्य सुनाने का आग्रह किया, पर कनात की आड़ में बैठे ताकि कवि की कविता सुन तो सकें पर मुँह दिखलाई न पड़े । करणीदान जी ने ओजमयी वाणी में ओजस्विनी रचना सुनानी प्रारंभ की । वाणी के प्रवाह के साथ साथ स्वाभिमानी, परन्तु काव्य-मर्मज्ञ अभयसिंहजी का हृदय तरंगित होने लगा । सुनाते-सुनाते सरबुलन्द और अभयसिंहजी के परस्पर द्वन्द्व युद्ध का वर्णन आया।

कवि स्वयं शूरता की मूर्ति-सा बोलता गया —

उड दलां झळा बोळां अनेक । ओळां जिम गोळां रीठ ऐक ।
सर फुटै हैमरां नर दुसार । पर रूधर न भीजै होय पार ।
कैमरां मार हिक बार कीध । दूसरां चिलै चाढण न दीध ।
जोधारा करै न पलक जेज । तोखारां खड़िया अत सतेज ।
अहँकार अठी अभमल अमान । खिलियार उठी सिर विलँद खांन।

(अर्थात् युद्ध के जाज्वल्यमान वातावरण में तोपों से गोलों का तीव्र प्रहार ऐसा प्रतीत होता है मानों आकाश से ओला-वृष्टि हो रही हो । तीक्ष्ण तीर और दुधारी तलवारें, घोड़ों एवं योद्धाओं के शरीरों के इतनी त्वरा से भार पार हो रही हैं कि रुधिर का संस्पर्श मात्र भी नहीं होता । तीक्ष्ण तीरों की एक ही वार में ऐसी मारक मार होती है कि दूसरी बार तीर चलाने की आवश्यकता ही नहीं होती । योद्धा रणक्षेत्र में अश्वों को युद्ध की अग्नि में झोंकने में क्षणमात्र का भी विलम्ब नहीं करते । इस प्रकार इधर स्वाभिमानी महाराजा अभयसिंह युद्ध हेतु तत्पर हैं तो उधर रणकुशल योद्धा सरविलन्द खांन ।)

वाह! वाह! कहते हुए महाराजा मारे जोश के उछल पड़े । कनात को कटार से फाड़ कर बाहर निकले और करणीदानजी को हृदय से लगा लिया । उसी समय उन्हें कविराजा की पदवी दी । लाख पसाव दिया । जागीर में आलावास गाँव दिया ।

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत द्वारा वर्णित उपर्युक्त घटना कविया करणीदान की कवित्वशक्ति की प्रभविष्णुता को तो अवश्य प्रमाणित करती है परन्तु तथ्यों के आधार पर खरी नहीं उतरती । अहमदाबाद के युद्ध में कवि का सम्मिलित होना इतिहास-सम्मत है । "राजरूपक" में इसका उल्लेख करते हुए कवि "वीरभांण रतनू" ने लिखा है—

"कवियों करन कहे कमधज्जां । समहर सोभा वधै सकज्जां ।"

यदि महाराजा उपर्युक्त घटना के कारण उनका मुँह भी नहीं देखना चाहते थे तो उनका युद्ध में सम्मिलित होना कभी संभव नहीं

होता । और फिर ये काव्य पंक्तियाँ "विरद शिणगार" से उद्धृत हैं जिसकी रचना स्वयं महाराजा के आदेश से हुई थी । जो कुछ भी हो, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत द्वारा वर्णित उपर्युक्त प्रसंग कविया करणीदानजी के संबंध में तो सत्य हो सकता है, परन्तु उनके द्वारा उद्धृत ये काव्य-पंक्तियाँ निश्चय रूप से अन्य रही होंगी ।

जोधपुर में कविया करणीदान ने अपनी काव्य-प्रतिभा से महाराजा अभयसिंह को मुग्ध कर दिया । अहमदाबाद के युद्ध में उन्होंने सक्रिय भाग लिया एवं युद्ध-समाप्ति के पश्चात् उन्होंने अपने बृहद् काव्य-ग्रंथ "सूरजप्रकास" की रचना की । उसी समय "वीरभांण रतनू" ने अहमदावाद युद्ध से संवंधित "राजरूपक" एवं "वखता खिड़िया" ने अपने 166 कवित्त लिखे । जब इन तीनों ने महाराजा को अपने अपने काव्य सुनाने चाहे तव महाराजा ने इन ग्रंथों का विस्तार पूछा । तीनों ग्रंथों का इतना वड़ा विस्तार सुनकर महाराजा ने इन्हें संक्षिप्त करने को कहा क्योंकि महाराजा उन दिनों बहुत अधिक व्यस्त थे । "वीरभांण रतनू" और "बखता खिड़िया" तो अपने ग्रंथों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत नहीं कर सके, परन्तु कविया करणीदान ने अहमदावाद युद्ध-प्रसंग को लेकर "विरद शिणगार" नामक छोटा सा काव्य-ग्रंथ तैयार कर दिया । महाराजा ने इसे आद्योपान्त सुना । वे अत्यन्त प्रभावित हुए । महाराजा ने स्वयं अपने हाथ से कविया करणीदान को "पगड़ी एवं तुर्रे" से सम्मानित किया, "कविराजा" की उपाधि से विभूषित किया, "लाख पसाव" प्रदान किया तथा आलावास ग्राम जागीर में दिया । इतना ही नहीं, महाराजा ने स्वयं करणीदान जी को हाथी पर सवार करवा कर आप स्वयं उनके साथ-साथ घोड़े पर उनके निवास तक पहुँचाने गये । इस संबंध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है ।

> अस चढियौ राजा अभौ, करि चाढै कवराज ।
> पोहर हेक जलेब में, मोहर हले महाराज ।।

अर्थात् राजा अभयसिंहजी अश्व पर आरूद हुये, कविराजा को हाथी पर ससम्मान बिठाया तथा एक प्रहर तक उनकी "जलेब" (उनके सम्मान में) महाराजा स्वयं साथ-साथ पधारे ।"

इस तथ्य की पुष्टि मारवाड़ की ख्यात से भी होती है –

"चारण कविया करणीदान ने अहमदाबाद में सिरोपाव दियो । हाथी, कड़ा, मोती, लाख पसाव, सिरोपाव दियो, परगने सोजत रो गांव आलावास दियो ।"

"विरद शिणगार" की प्रारंभिक पंक्तियों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है ।

"महाराज निवाजस ऊँच मन्न ।
कविराज रीझ कहियौ करन्न ।।"

इस दोहे के अतिरिक्त उक्त घटना से संबंधित निम्नलिखित तीन अन्य दोहे उनके वंशजों को स्मरण है –

(1) श्रीहथ तुररौ टांकियो, श्रीहथ बांधी पाग ।
कवराजा कह करन नै, "अभै" बधायौ आग ।।

(2) सतरेसै सत्यासियै, हित जुत प्रीत हुलास ।
करै रीझ अभमल कमध, वगसै आलावास ।।

(3) कव वैठा कुभाथळां, ले मद चट्ठा लाल ।
हुकम अपूठा ना फिरै, ज्यां तूठा अभमाल ।।

अर्थात् महाराजा अजीतसिंह ने अपने हाथों से कवि के पगड़ी वाँधी तथा तुर्रा टाँका । उन्होंने करणीदान को कविराजा की उपाधि से सम्मानित किया तथा आगे बढ़ कर उनका अभिनंदन किया । संवत् 1787 में अत्यन्त प्रेम से उल्लसित होकर, करणीदानजी की कविता से रीझ कर उन्हें "आलावास" ग्राम बख्शीस में दिया । जिनके हुक्म का कभी उल्लंघन नहीं होता है तथा जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे निहाल कर देते हैं ऐसे महाराजा अभयसिंह ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक कविराजा को हाथी के हौदे पर बिठला कर सम्मानित किया ।

किसी भी कवि के लिए ऐसा सम्मान मिलना दुर्लभ ही है । करणीदानजी को अपने जीवनकाल में ही वह सब कुछ प्राप्त हो गया जो किसी भी युग में किसी भी कवि के लिए स्पृहणीय हो सकता है ।

कविया करणीदान प्रतिभा-सम्पन्न कवि, पराक्रमी वीर होने के साथ ही विश्वासपात्र सेवक भी थे । उनकी स्वामिभक्ति से संबंधित एक अन्य घटना उनके वंशजों को स्मरण है –

एक बार नागोर में राजाधिराज बखतसिंह ने एक गोठ में अपने बड़े भाई महाराजा अभयसिंहजी को आमंत्रित किया । अभयसिंह जी को यह डर था कि पिता महाराजा अजीतसिंहजी की तरह बखतसिंह उनकी भी हत्या कर सिंहासन हथियाने का उपक्रम करेंगे । अस्तु, नागोर में उन्होंने पोकरण ठाकुर एवं कविया करणीदान को अपनी सुरक्षा का भार सौंपा । इन दोनों को रात्रि के समय ढोलिया (पंलग) का पहरा देने को कहा गया । महाराजा ने तो दावत में शराब पी ली, परन्तु इन दोनों ने कर्तव्य का स्मरण कर शराब छुई तक नहीं । आधी रात तक पोकरण ठाकुर पहरा देते रहे और अर्द्धरात्रि के पश्चात् कविया करणीदान । रात भर बखतसिंह कोई न कोई बहाना बनाकर आते रहे, परन्तु इन्हें सजग देखकर निराश लौट गये । प्रातःकाल फिर एक बार वखतसिंह आये तो करणीदान ने युक्तिपूर्वक महाराजा के पैर का अंगूठा दबा कर उन्हें जगा दिया एवं उन्हें प्रत्यक्ष रूप से जता द्विया कि वखतसिंह हाथ में नंगी तलवार लिये हैं । इस प्रकार करणीदान की सजगता एवं स्वामिभक्ति से महाराजा के प्राणों की रक्षा तो हो गई, परन्तु वखतसिंह, जो उनके द्वारा पितृहन्ता के रूप में निन्दा किए जाने के कारण पहले से ही कुपित थे, उनके प्रवल शत्रु वन गये ।

महाराजा अभयसिंहजी की मृत्यु के पश्चात् कविया करणीदान ने उनके पुत्र महाराजा रामसिंह की भी स्वामिभक्ति से भरपूर सेवा की । जब बखतसिंह के जोधपुर पर आक्रमण की सूचना मिली तो मारोठ से करणीदान एवं जगन्नाथ पुरोहित दोनों ग्वालियर पहुँचे और मल्हारराव होलकर को रामसिंहजी की सहायता के लिए सेना भेजने हेतु राजी कर लिया । परन्तु होलकर की सेना की सहायता होने पर भी रामसिंह परास्त हो गये और जोधपुर पर बखतसिंह का अधिकार हो गया । कविया करणीदान की बखतसिंह से शत्रुता पहले से चली आ रही थी । श्री जबेरचंद मेघाणी ने करणीदान का बखतसिंह की पितृहत्या के लिए भर्त्सना करने संबंधी एक और दोहे का उल्लेख किया है —

बापो मत कह बगतसी, कांपत है केकांण ।
एक बार बापो कहे, पमंग तजेला प्रांण ।।

अर्थात् हे बखतसिंह ! इस घोड़े को बप्प ! बप्प !! (घोड़े को पुचकारने हेतु कहा जाने वाला शब्द) मत कह । यह अश्व तुम्हारे बप्प कहते ही संशकित होकर काँप रहा है । यदि एक बार फिर बप्प शब्द कहोगे तो यह घोड़ा निश्चय ही प्राण त्याग देगा । ध्वनि यह है कि तुमनें अपने पिताश्री को बापजी ! बापजी !! कहते कहते उनके प्राणों तक का अपहरण कर लिया, उनकी हत्या कर दी । अतः यह घोड़ा इस संबोधन से थर्राता है । श्री जवेरचंद मेघानी ने अपने ग्रंथ "चारणो अने चारणी साहित्य" में इस घटना का उल्लेख कविया करणीदान के नाम से ही किया है । कुछ लोगों का मत है कि यह दोहा दलपत वारहट द्वारा लिखे गये ग्रंथ "चूक पचीसी" के दोहों में से एक है । कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता । कविया करणीदान की स्पष्टवादिता एवं बखतसिंह से उनकी शत्रुता के कारण संभवतः यह दोहा उन्हीं द्वारा रचित होगा ।

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने कविया करणीदान द्वारा बखतसिंह की भर्त्सना करते हुए कहे गये निम्नलिखित छन्दों का उल्लेख किया है —

(1) बखता बखत बाहिरा, क्यूं मार्‌यो अजमाळ ।
हिंदवाणी रो सेवरो, तुरकाणी रो साल ।।

(2) प्रथम तात मारियो, मात जीवती जलाई ।
असी च्यार आदमी, हत्या ज्यांरी पण आई ।
कर गाढ़ौ इकलास, बेग जैसिंह बुलायो ।
मेटी धरम म्रजाद, भरम गांठ रो गमायो ।।
कवियणां हूंत केवा करै, धरा उदक लेवण धरी ।
बखतसी जलम पायां पछे, किसी बात आछी करी ।।

अर्थात् हे बखतसिंह ! तूं तो समय के विपरीत कार्य करने वाला है । तूने हिन्दुओं के रक्षक एवं प्रतिपालना करने वाले तथा मुसलमानों के छाती को शूल के समान चुभने वाला महाराजा अजीतसिंह की हत्या क्यों की ?

हे बखतसिंह ! तूने जन्म लेकर कौन सा अच्छा कार्य किया है ? सर्वप्रथम तो अपने पिता की हत्या की और तत्स्वरूप माता

को जीवित जला दिया । (सती होने से तात्पर्य है) महाराजा की हत्या के कारण उनके पीछे सती होने वाली 84 स्त्रियों की हत्या का तू भागी है । तूने जयसिंह से मित्रता कायम कर षड्यन्त्र करके उन्हें जोधपुर पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया । धर्म की मर्यादा छोड़ कर तूने अपनी समस्त प्रतिष्ठा भी खो दी । कवियों से तू शत्रुता रखता है तथा तूने उनके शासन जागीर को पुनर्ग्रहण करने की कुचेष्टा की है ।

बखतसिंह के जोधपुर पर अधिकार हो जाने पर अन्य चारण कवियों एवं पुरोहितों के साथ कविया करणीदान की जागीर का गांव आलावास भी जब्त कर लिया गया । करणीदानजी को वहुत विरक्ति हुई और हमेशा के लिए वे जोधपुर छोड़कर एकान्तवास हेतु प्रस्थान कर गये । इसके पश्चात् वे पुनः जोधपुर कभी नहीं आये ।

कविया करणीदान के जोधपुर छोड़ कर एकान्तवास करने एवं किशनगढ़ की ओर आने का समाचार जव किशनगढ़ दरबार बहादुरसिंहजी को मिला तो उन्होंने "आडे फिर कर" उन्हें रोक लिया और कहने लगे, "आप राठौड़ों के कविराजा हो । हम भी राठौड़ों के भाई हैं, अतः आप यहीं बिराजिए । मेरी जागीर से आपको भूमि कायम कर दूँगा ।" कविराजा उनके आग्रह पर वहीं रुक गये ।

दरबार ने अपने वचनानुसार कविराजा के लिए भूमि नापने का आदेश दिया । तहसील अराई, लांबी, दाड़िया तथा कस्तूरा इन चारों में दो-सौ दो-सौ बीधा जमीन नप चुकी थी । उसी समय करणीदान जी की बड़ी पत्नी (टहले वाली) ने उन्हें समझाया, "आपको इतनी जमीन का क्या करना है? आप तो दरबार को अर्ज कर कोई छोटा-मोटा गाँव ले लीजिए ।" करणीदानजी को भी यह बात जंच गई । उन्होंने दरबार से इसके लिए अर्ज की और उन्होनें उन्हें कैबाणिया नामक गाँव जागीर में बख्स दिया तथा नपी हुई जमीन भी रखने का उनसे आग्रह किया ।

करणीदानजी के किशनगढ़ निवास से संबंधित एक और घटना उनके वंशजों ने बताई है । उसके अनुसार किशनगढ़ दरबार ने

किसी जती की प्रेरणा से गुजरात काठियावाड़ में अपनी दूसरी शादी करनी चाही । महारानी ने और कोई उपाय न देखकर करणीदान जी को बुलवा भेजा और उनसे दरबार को दूसरी शादी से विमुख कराने का आग्रह किया । करणीदानजी ने महारानी को विश्वास दिलाया कि अवसर पड़ते ही वे अपनी कविता द्वारा दरबार को इस कार्य से विमुख करने की चेष्टा करेंगे ।

कहा जाता है कि करणीदान ने "जतीरासा" नामक कृति की रचना करके महाराजा को सुनाई । इस कृति में जतियों के आडम्बर, पाखंड एवं दुराचार का वर्णन था । कृति को सुनकर दरबार का मन जती की ओर से विरक्त हो गया और उन्होंने विवाह करने का विचार त्याग दिया । जब जती को इस घटना का पता चला तो उसने अपने मंत्रबल से कविराज को स्नान करते हुए "बाजोट" सहित काठियावाड़ पहुँचा दिया । वहाँ पर कविया करणीदानजी ने जतियों की प्रशंसा में एक अन्य "जतीरासा" की रचना करके तुरन्त उन्हें सुनाया । जती बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें वापस किशनगढ़ पहुँचा दिया ।

उक्त घटना में मंत्रबल से काठियावाड़ पहुँचाने एवं वापस भेज देने की बात किंवदन्ती ही है । हो सकता है किसी शुद्धाचरण यति के कहने पर उन्होंने पुराने "जतीरासा" को नष्ट कर नये "जती-रासा" की रचना कर डाली हो । प्राचीन "जतीरासा" तो हस्तलिखित रूप में उपलब्ध है, परन्तु नया "जतीरासा" कहीं देखने को नहीं मिलता ।

इन्हीं किशनगढ़ नरेश के कहने पर बखतसिंह ने आलावास ग्राम कविराजा को लौटा दिया था । परन्तु करणीदानजी कभी लौट कर आलावास नहीं आये । उनका अन्तिम समय किशनगढ़ में ही बीता । किशनगढ़ दरबार की मृत्यु संवत् 1838 में हुई । उस समय कविया करणीदान ने एक मार्मिक मरसिया रच कर अपने हृदय की वेदना प्रकट की । किशनगढ़ में ही इनकी मृत्यु हुई जिसकी निश्चित तिथि कहीं उपलब्ध नहीं है । उनकी मृत्यु संवत् 1845 के आस-पास हुई होगी । उनके वंशजों के कथनानुसार किशनगढ़

में उनकी स्मृति में एक छतरी बनी हुई थी एवं उस पर एक शिलालेख भी था । दोनों अब पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं ।

करणीदान की एक पत्नी अत्यन्त विदुषी एवं अच्छी कवयित्री थी । ऐसा कहा जाता है कि अपनी ससुराल जाते हुए मार्ग में बड़ली ठाकुर लालसिंहजी ने कवि का बहुत सत्कार किया । कविया करणीदान बहुत प्रसन्न हुए । परन्तु बड़ली ठाकुर ने उस समय तक किसी भी युद्ध में अपनी वीरता का परिचय नहीं दिया था, अतः उन्होंने उनकी प्रशंसा में किसी गीत की रचना नहीं की । अपने अन्तिम समय में उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"ठाकुर लालसिंह की सेवा का मैं ऋणी हूँ । मैं उपयुक्त अवसर के अभाव में उनके लिए कुछ भी नहीं लिख सका । अब मेरे बाद तुम अवसर पड़ने पर मेरी इस अन्तिम अभिलाषा को पूरी कर देना ।" कहते हैं इसी कारण उनकी पत्नी उनके साथ सती नहीं हुई । जब मरहठों के साथ वीरता से युद्ध करते हुए ठाकुर लालसिंह काम आये, तब कविराजा की पत्नी ने उनकी प्रशस्ति में "मरसिया" के रूप में अनेक दोहे कहे । उनमें से कुछ निम्नांकित हैं —

> दल आसी दिखणाद रा, तोपां पड़सी ताव ।
> आ बड़ली भिलसी उ-दिन, घसली मो सिर धाव ।।
> बंका आखर बोलतौ, चलतौ बंकी चाल ।
> अड़ियो बंको अरि दलां, लड़ियो बंको लाल ।।

अर्थात् हे बड़ली ! तू किस बात पर अड़ रही है? वास्तव में तू बड़ी खूंख्वार है । यह बड़ली जिस दिन विनष्ट हो जायेगी उस दिन मेरा सिर चकनाचूर हो जायगा ।

दक्षिण से (मरहठों के प्रबल) सैन्य दल आयेंगे । तोपों से गोलों की बौछार होगी । उनके आक्रमण से जिस दिन बड़ली विनष्ट हो जायगी उस दिन मेरा सिर घावों से आपूरित हो जायेगा ।

मरहठों की इन प्रबल सेनाओं से उस रणबांकुरे योद्धा ठाकुर लालसिंह जो स्वयं बंकिम चाल वाला था एवं बांके अक्षर (शौर्यपूर्ण कथन) बोलता था, ने वीरतापूर्वक युद्ध किया

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने कविराजा की बड़ली यात्रा का

वर्णन भिन्न प्रकार से किया है । उनके अनुसार "कविराजाजी एक बार तीज पर अपने ससुराल जा रहे थे । रात्रि का समय था । मार्ग भूलकर बड़ली ग्राम पहुँच गये । बड़ली के ठाकुर लालसिंहजी ने कविराजा का बड़ा सत्कार किया तथा रात्रि में वहीं विश्राम करने के लिए बहुत मिन्नत की—पर कविराज नशे की हालत में थे । वे लालसिंहजी को ठीक तरह से पहिचान भी नहीं सके और उन्हें साधारण सेवक समझ कर अपने ससुराल का मार्ग दिखाने के लिए घोड़े के आगे पैदल चलने को कहा । रास्ते में उनसे हुक्का भरवाने जैसी साधारण सेवायें भी लीं और कभी क्रुद्ध होकर एक-आध चाबुक की भी मार दी । बड़ली ठाकुर लालसिंहजी प्रसन्नता से सेवा करने में गौरव अनुभव कर रहे थे और उनके इस व्यवहार से उन्हें आनंद आ रहा था । दूसरे दिन नशा उतरने पर कविराजा ने उन्हें पहचाना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ । कहने लगे कि आपके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता । मैं तो कवि हूँ । आपके नाम को केवल अमर कर सकता हूँ । आप क्षत्रिय हैं । कोई वीरता का काम कर दिखलाइए । मैं आपको अमर कर दूँगा । वह भी समय आया, महादाजी सिंधिया की सेना ने अजमेर पर कब्जा कर वहाँ के इस्तमरारदारों से खिराज (कर) लेना प्रारंभ किया । बड़ली ठाकुर लालसिंहजी ने इसका विरोध कर युद्ध किया ।

उक्त घटना को लेकर कविया करणीदान ने कई गीत और दोहे इतने प्राणवान् रचे कि सुनने और बोलने वाले के रोंगटे खड़े हो जायें । दोहों में प्रसाद गुण कूट-कूट कर भरा है । उनके द्वारा रचित गीतों और दोहों ने लालसिंहजी को सचमुच अमर कर दिया । राजस्थान में कदाचित् ही ऐसा गांव मिले, जहां इनका एक-आध दोहा किसी को याद न हो ।"

रानी लक्ष्मीकुमारी ने अपने निबंध से ठाकुर लालसिंहजी की प्रशंसा में कहे गये किसी भी गीत या दोहे का उल्लेख नहीं किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी पत्नी एवं बहिन द्वारा लालसिंहजी की स्मृति में लिखे गये गीतों और दोहों से ही संभवतः उनका अभिप्राय है, जो करणीदानजी की मृत्यु के बाद लिखे गये थे । जो भी हो

ससुराल जाते समय उनकी बड़ली यात्रा एवं ठाकुर लालसिंहजी द्वारा उनके सम्मान की घटना उनके वंशजों को भी कण्ठस्थ है । यह घटना कवि के प्रति अथाह आदर एवं श्रद्धा का प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करती है ।

इन सब घटनाओं के आधार पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि कविया करणीदान अपने समय के उत्कृष्ट कवि एवं अनेक राजा-महाराजा ठाकुर-जागीरदारों से समादृत विद्वान् थे । कहते हैं महाराजा अभयसिंहजी ने स्वयं कविराजा के सम्मान में निम्नलिखित दोहा कहा था –

दूजा चारण देस रा, सह पौसाक समान ।
तुररौ बीसौतर तणो, कवियो करणीदान ।।

तात्पर्य है कि देश के अन्य चारण कवि शरीर की पौशाक के समान हैं किन्तु चारणों की एक सौ बीस शाखाओं में कविया करणीदान उस पौशाक को अलंकृत करने वाले तुर्रे के समान सर्वोपरि हैं । इस दोहे से कुछ प्रसिद्ध स्वजातीय बन्धु रुष्ट हो गये, तब करणीदान जी ने निम्नलिखित दोहा सुना कर अपनी विनम्रता प्रकट की थी –

तुम कदली के पात हो, हम इमली के पान ।
तुम हम किसी बराबरी, कह कवि करणीदान ।।

नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ के संग्रह के अनुसार महाराजा ने पुनः निम्नलिखित दोहा कहा –

करणीदान सुजान कवि, पख ऊजल पित मात ।
तुम अमली के कहत हो, हो कदली के पात ।।

कविया करणीदान के सम्बन्ध में अन्य कवियों द्वारा रचित निम्नलिखित दोहे उनकी स्वामिभक्ति, काव्य-पटुता एवं वाग्विदग्धता के स्पष्ट परिचायक है –

(1) अभमल सिरखा राजवी, शेर जिसा उमराव ।
हुवा न कोई होवसी, करन जिसा कवराव ।।

(2) सूरहूंत प्रगट्यो करंन, सुन्यौ सबै ही लोय ।

करने "सूरप्रकास" किय, रस अद्‌भुत है जौय ।।
(3) ग्रहपति "सूरप्रकास" ते, बाहिर दिवस प्रकास ।
रूपक "सूरप्रकास" ते, अन्तर नीत उजास ।।

गुजराती के प्रसिद्ध विद्वान् श्री झवेरचन्द मेघाणी द्वारा लिखित कवि के गौरव का परिचायक निम्नलिखित अनुच्छेद द्रष्टव्य है –

"शूरवीराना विरद गाणार, कायरो ने रणशौर्य थी रोमांचित करणार टूटती टेक ने टकावी जाणनार, पापी ने पण मोंडांमोंड पापी कहणार, शरणागत ने संधरवा मा राजकोष नी पण खेवना न करणार, अने गाज जवो आपनो धर्म पालणार, छता जरूरत पड़े तो जुद्धे पण चढ़नार, स्वामी ने खातर शस्त्रो धारने संग्राम माउतरणार, वीर चारण करणीदान नूँ दृष्टान्त राजपूताना नी तवारीख मां घणू उज्ज्वल छै ।"

विलक्षण प्रतिभां एवं कवि की बहुज्ञता

कविया करणीदान की जीवनी के सूत्र बहिःसाक्ष्य से एकत्र करने में आशानुकूल सफलता भले ही न मिले, परन्तु उनके द्वारा रचित ग्रंथ प्रकाश-स्तम्भ की भांति कवि के ओजस्वी व्यक्तित्व, उनकी बहुज्ञता, कवित्व-शक्ति एवं कल्पना-कौशल को प्रकाशित करते रहेंगे । उनका एक ही ग्रंथ "सूरजप्रकास" उनके व्यक्तित्व के बहुविध आयामों को स्पष्ट करता है । वैसे कविया करणीदान की अद्‌भुत कवित्व-शक्ति के विषय में उनके समकालीन कवि "सेवग प्रयाग" ने अपने ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य "अभैगुण" (अप्रकाशित) में ठीक ही कहा है –

"कवियो करणीदान, उकति अनोखा आखर।।"

करणीदान ने "सूरजप्रकास" के अन्त में ग्रंथ-रचना के संबंध में कहा है –

सत्रै से समत सत्यासिये, विजै दसमि सनि जीत ।
वदि कातिक गुण वरणियो, दसमी वार अदीत ।।
वणियो गुण इक बरस बिच, उकति अरथ अणपार ।

7500 अनुष्टुप् छन्दों के ऐसे विशाल ग्रंथ का प्रणयन एक वर्ष मात्र में कर देना कवि की विलक्षणं प्रतिभा का ही परिचायक है । "सूरजप्रकास" में उत्तम से उत्तम छन्द योजना, ओजमयी शब्दावली, उत्कृष्ट कोटि की कल्पना, प्रबन्ध का श्रेष्ठ नियोजन तथा वैणसगाई एवं उपमाओं का सुन्दर संयोजन कवि की श्रेष्ठ कवित्वशक्ति का परिचायक है ।

"सूरजप्रकास" के अध्ययन से स्पष्ट है कि कविया करणीदान का अध्यंयन विस्तृत एवं अन्तर्दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी । उन्होंने प्राचीन साहित्य का पर्याप्त अध्ययन किया था । विविध भाषाओं के अतिरिक्त ज्योतिष, संगीतशास्त्र, सामुद्रिक विद्या, योग, इतिहास आदि का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था ।

विविध भाषा ज्ञान

प्राचीनकाल से ही उत्तम कवियों के लिए यह अनिवार्य सा रहा है कि उन्हें विविध भाषाओं का ज्ञान हो । कविया करणीदान को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, शूरसेनी, ब्रजभाषा, पंजाबी, सोरठी, दक्खिनी, सिन्धी आदि विविध भाषाओं का सम्यक् ज्ञान था । षट्भाषा-वर्णन करते हुए उन्होंने इन सभी का उल्लेख किया है । उदाहरणार्थ, ब्रजभाषा में विरचित निम्नलिखित छन्द में भाषा का प्रवाह, अलंकार-योजना तथा शब्द-संयोजन द्रष्टव्य है ।

साह के कटहरै विफरि ठाडो अभैसाह,
मारन तुजकमीर रोस की रटारीये ।
मीरखांन चक्रत अमीर परे मुरझाइ,
छोह की कटक देखि, छटक छटारीये ।
मोतीमाल साहदे मनायो खांनदौरा मिल,
ऊझक विलोकै तहां बेगमां अटारीये ।
पांन धार्‌यौ प्रकट गुमांनी धार्‌यौ जोधपुर,
दिल्ली सोच धार्‌यौ कर धार्‌यौ तैं कटारीये ।

अर्थात् राजकुमार अभयसिंह मुहम्मदशाह के सिंहासन के कटघरे की ओर क्रोधित होकर खड़े हो गये और उन्होंने तुजकमीर को मारने

हेतु अपने हाथ में कटारी निकाल ली । यह देख कर मीरखांन चकित हो गये एवं अन्य अमीर उमराव मुरझा गये । उनके क्षोभ की छटा देखने योग्य थी । मुहम्मदशाह ने खांनदोरा से मिल कर अभयसिंह के गले में मोतियों की माला डाल दी । इस दृश्य को बेगमें अपनी अटारी (झरोखे) पर बैठी-बैठी उचक-उचक कर देख रही हैं । उनके कटारी धारण करने पर प्रकट में तो उन्होंने मुहम्मदशाह द्वारा दिये गये पान को ग्रहण कर लिया परन्तु उनके स्वाभिमान को देखकर मुहम्मदशाह के हृदय में गंभीर चिन्ता व्याप्त हो गई ।

पंजाबी भाषा का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है —

रज्जा ते वड्डा सबै, सिरपोस रजंदा ।
रूप दुडंगा रज्जिए तपतेज तुजंडा ।
अज्जा तेडा आगलैं, आग्गौ "जैचंदा" ।
नाल़ जिन्हूडी हिन्द, देस सव भूप सजंदा ।।

अर्थात् हे महाराजा अजीतसिंह तूं सव राजाओं में महान् है, तुझे मुकुट शोभा देता है एवं तेरा तेज सूर्य के सदृश प्रभापूर्ण है । हे अजीतसिंह ! तुझसे पहले जो महाराजा जयचंद हुए हैं, जिनकी बरावरी किसी भी देश के शासक नहीं कर सकते ।

कविया करणीदान ने प्रसंगवश भाषाओं के मूल लक्षण ग्रंथों एवं उनके वर्गीकरण को भी प्रस्तुत किया है । यथा —

"प्रथम भाखा संसक्रत सो तो अनुभूति क्रत्य सारस्वत सो पाई । दूसरी नाग भाषा सो नाग पिंगळ सौ आई । अपभ्रंस भाखा ग्रंथ विनोद विजय सौं पहिचांणी । मगध देश की भाषा जैन सास्त्र सैं जांणी । प्राकत सो कुल का विचार जिस सेती प्राक्रत भाखा विस्तार करि गाई । जिसमें पूरब पश्चिम उत्तर दक्खिन की ए च्यार भाखा कहि दिखाई । जिनमें तीन भाखाएँ एक अंग करिके बखांणी । चौथी पश्चिम की भाखा जिसकी कही तीन प्रकार की वांणी । ऐसे तरह सै भाखा का भांति भांति का बाखांण करिके दिखाया ।"

भाव है कि संस्कृत का स्वरूप अनुभूतिस्वरूपाचार्यकृत सारस्वत व्याकरण से, नागभाषा का नागपिंगल ग्रंथ से तथा प्राकृत का हेमचन्द्राचार्य-कृत व्याकरण से स्पष्ट होता है । प्राकृत भाषा के दक्खिनी अनेक रूप प्राप्त होते हैं ।

छन्दःशास्त्र-ज्ञान

कविया करणीदान को संस्कृत के अधिकांश वर्णवृत्तों का ज्ञान था । सूरजप्रकास में कवि ने विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । संस्कृत के प्रचलित छंदों के विषय में वे कहते हैं —

"जिस सिलोकां का आदि प्रबंध अस्ट अखिरूं से लेकरि इकीस अक्षरूं लग पद बणावणैका ठहराव च्यार पद हुवै एक सिलोक का बणाव सो बत्तीस अखिरूं सै लेकरि चौरासी अखिरूं लंग लही इस उपर होय सो दंडक कहियै । तिसमें फिर भेद बहौत सालंकार अठार वरणण मात्रा का विचार । ....संदेह के मेटणै को दोय ग्रंथ एक व्रतरतनाकर दूसरा स्रुतबोध साखि ।"

अनुस्टप अष्टपदं जुक्तं, इंद्रवज्र इकादस ।
ऊपिंद्रवज् इकादस वसंततिलका चतुर्दस ।।
पंचदस मालनी छंद, संक्षनी सप्तदस्तथा ।
एकौनविंसतीसार्दूल, इकवींसति श्रगधरा ।

संस्कृत के छंदशास्त्र का ऐसा सम्यक्-ज्ञान डिंगल के बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है ।

ज्योतिष एवं सामुद्रिकशास्त्र का ज्ञान

कविया करणीदान के सूरजप्रकास में हमें उनके ज्योतिष एवं सामुद्रिकशास्त्र के सम्यक् अध्ययन का पता चलता है । ज्योतिष के ग्रंथ "जातकाभरण" को आधार मानकर उन्होंने अभयसिंह के जन्मफल का विस्तार से वर्णन किया है । समस्त ग्रहों, राशियों एवं लग्नों के फलों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं —

व्रस्चक सक्रांत दिन खट वितीस ।
ससि सुक्र रासि तुल वर सधीस ।।
राजै तदि मंगळ कुंभ रासि ।
कहि मीन व्रहस्पति बल प्रकासि ।।
रचि मीन रासि सनि करक राह ।
अरु मकर रासि केतह अथाह ।।
कहि व्रस्चक भांण बुध बुध प्रकास ।
तन लगन मिथुन सुभ अनत तास ।।

इसी प्रकार सामुद्रिकशास्त्र का भी कविराजा को खूब ज्ञान था । महाराजकुमार अभयसिंह के सामुद्रिक चिह्नों एवं उनके फलों का विवेचन करते हुए कविराज कहते हैं —

सठिक त्रकूंण कर चह न सम्म ।
पै उरध रेख जळहळ पदम्म ।
कहि हस्त-चिह्न वांणिक प्रकार ।
सति सांम दुरग विध वचन सार ।।
मणिबंध तीन मणि जब प्रमांणि ।
मछ कच्छ कुंभ गज रथ मंडाणि ।।
असि खड़ग सकति तोरण उदार ।
अंकुसां संख चक्र सुभ अपार ।।
परचंड दंड हर गदा पांणि ।
बिहुवै अकार वणि धनक बांणि ।।

स्वस्तिक, त्रिकूंण, पद्‌म, दुर्ग, यव, कच्छ, कुंभ, गज, रथ, असि, खड्‌ग, शक्ति, तोरण; शंख, चक्र आदि सभी सुफलदायक मांगलिक चिह्नों के फल का विश्लेषण कविया करणीदान ने किया है । उपर्युक्त वर्णन से इस धारणा की पुष्टि हो जाती है कि ज्योतिष एवं सामुद्रिक शास्त्र का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था ।

संगीतशास्त्र-ज्ञान

कविया करणीदान को संगीत-शास्त्र का भी सम्यक् ज्ञान था । सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छना, अष्ट ताल, चौरासी ताने (उन्चास षाडव और पैंतीस औडव) छः राग, छतीस रागिनी का उल्लेख सूरजप्रकास में मिलता है । यथा —

गांन सप्त सुर ग्रांम मुर, अरु मुरछन यकवीस ।
तांन कोटि गुणचासते, मूरतिवंत मईस ।।
ताल अस्ट द्वादस तवन, सोळह भेद संगीत ।
रांग छत्तीसह रागणी, पंच उकति सुप्रवीत ।।

उन्होंने संगीत शास्त्र के प्राचीन एवं प्रामाणिक श्रीधर कृत "संगीत-सागर" को आधार बनाकर सूरजप्रकास में संगीतसंबंधी विभिन्न तत्त्वों को प्रस्तुत किया है ।

संगीत के विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों का उल्लेख सूरजप्रकास में मिलता है । यथा –

"म्रदंगूं के परन धौलकूं के टिकौर । सुरवीणूं के झणहण तंबूरूं के घोर । तालूं की झमक झंझरूके झणकार । पिनाकूं का परवेज, स्रीमंडळूँका सवाद । रंग की बरखा अलगौजूं के नाद ।

यही नहीं कविया करणीदान को इन वाद्य-यंत्रों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि का भी सम्यक् ज्ञान था । मृदंग और नूपुर से निकलने वाली ध्वनि का सुन्दर शब्द-निरूपण देखिए –

धुनि म्रदंग धुधकटस, धुकट धुधुकटस धुकट धुर ।
झणणणणण जंत्र झणकि, प्रगट झिमझिम धुनि नूपर ।।
उमंग अंग उछरंग, रंग क्रुक्रु थुंग थुंग रत ।
थेईय थेईय तत थेईय, ततततत थेइय थेइय तत ।।

वेदान्त-योगसंबंधी ज्ञान

कविया करणीदान को वेदान्त तथा योग सम्बन्धी क्रियाओं का भी ज्ञान कम नहीं था । महाराजा जसवंतसिंह के वेदान्त एवं योग सम्बन्धी ज्ञान का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं –

नाभ राज इक निमल, प्रफुलि निरराज वंसपर ।
रहै जठै तन राज, रमै रसराज रूपधर ।
पंडव राज प्रधांन, मूरछन राज व्रहंमंड ।
जीति राज तन जिता, चक्र सिवराज खंड चंड ।

इसी प्रकार राजा पुंज के पुत्रों के वर्णन में हठयोग, प्रेतमाया, तंत्र आदि का वर्णन मिलता है ।

अस्त्र-शस्त्र-सम्बन्धी ज्ञान

कविया करणीदान एक कवि ही नहीं, शूरवीर योद्धा भी थे । अनेक युद्धों में उन्होंने महाराजा अभयसिंह के साथ अपने शौर्य का प्रदर्शन किया था । युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अस्त्र-शस्त्रों की विशद् जानकारी कविया करणीदान को थी । उस समय प्रचलित अस्त्र-शस्त्रों में से शायद ही कोई ऐसा अस्त्र है जिसका उल्लेख "सूरजप्रकास" में नहीं किया गया हो ।

वस्त्र एवं आभूषण सम्बन्धी ज्ञान

"सूरजप्रकास" में कविया करणीदान ने केवल युद्धविषयक सामग्री का ही नहीं वरन् सामाजिक जन-जीवन का भी श्रेष्ठ निरूपण किया है । राजरानियों द्वारा पहने जाने वाले विभिन्न राजसी वस्त्राभूषणों का वर्णन "सूरजप्रकास" में उपलब्ध है, यथा –

वस्त्र

सिकलात मुखमल खास । तहताज अतलस तास ।
खुल इळाइच खिमखाप । सुजि मुलमुला स्रीसाप ।।

आभूषण

बिनै जड़ाव बाजुवंध, सम्म पाट सोहिया ।
स्रिखंड साखि जांणि स्रप्प, मैण धार मौहिया ।।
प्रवीण कंकिणीस पौच , गज्जरा ज नौग्रही ।
हिमंकरं रखत्त हस्त, भेद जांणि सोभही ।।

साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान

कविया करणीदान ने संस्कृत के लक्षणग्रन्थों को आधार बनाकर "सूरजप्रकास" में अपने काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी सिद्धातों की पुष्टि अनेक स्थानों पर की है । ग्रन्थारंभ में श्री अक्षर को आचार्यों ने मंगलसूचक एवं शुभ माना है । उस सिद्धान्त की साक्षी रूप में कवि ने माघ एवं भारवि कवि के कथन का उल्लेख किया है । यथा –

(1) मांडै कायब माध मधि, पण्डित माघ प्रमांण ।

(2) भार अरथ कवि भारवी, कायब कियौ किरात ।
मल्यनाथ टीका महीं, वळै लिखी आ बात ।।

उसी प्रकार उत्तम काव्य के लिए जिन-जिन लक्षणों की आवश्यकता है उनका वर्णन करते हुए कविया करणीदान कहते हैं –

"च्यार प्रकार की जुगति, सात रूपकूं के विधांन । पंच प्रकार की उगति अस्टाविधांन । तीन प्रकार का गुण नव प्रकार की

रजधांणी । दोय प्रकार का काइब रूप च्यार प्रकार की वांणी । सात प्रकार का सर च्यारसूं लेके चढ़ावै । आठमै सरकी झपट पर वे चौरासी बंध रूपकौं के सरिजणहार ।

संस्कृत-साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान

कवि को संस्कृत के अनेक ग्रंथों का सम्यक् ज्ञान था । ग्रंथ के अन्त में जिन ग्रंथों की उपलब्धि का विवरण दिया गया है उनमें संस्कृत-साहित्य के उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं —

खंड-प्रसस्त-बलमीक, हणूं नाटक अध्यातम ।
द्रोणपरब रघुवंस, सारसुत व्यायकरण हिम ।
हठ प्रदीप अस्टंग वळै, तप सार ग्रन्थ वर ।
आठ ग्रन्थ ज्योतिस, सरस संगीतह सागर ।
सूर स्रंगार विनोद वीर, ध्रम सासत्र धारण ।
अलंकार खटभाख, विवध भाखा विसतारण ।
कवि किसब रागमाळा सकळ, ब्रह्म गीनांन बतावसी ।
सूरिजप्रकास गुण सीखसी, अतरा गुण तै आवसी ।।

ऐतिहासिक ज्ञान

कविया करणीदान को इतिहास की सम्यक् जानकारी थी । अनेक ख्यातों, बातों, कथाओं तथा ऐतिहासिक आख्यानों के अध्ययन का निचोड़ उन्होंने "सूरजप्रकास" में दिया है । कर्नल टॉड इसकी सामग्री से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने "राजपूताना के इतिहास" का अधिकांश भाग इसके आधार पर ही लिखा । कविया करणीदान ने जो ऐतिहासिक सामग्री दी है वह संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त प्रामाणिक है । घटनास्थल पर उपस्थित रहने के कारण अहमदाबाद के युद्ध का वर्णन तो अत्यन्त ही सजीव एवं प्रभावशाली है ।

कल्पना-कौशल

कविया करणीदान ने शुष्क ऐतिहासिक इतिवृत्त को सरस प्रबंध का रूप ही नहीं दिया वरन् उसमें प्रसंग-वश अपने कल्पना-कौशल से ऐसी अनूठी एवं मौलिक उद्भावना की है जिसके कारण

"सूरजप्रकास" का प्रबंध-कलेवर अत्यन्त आकर्षक बन गया है । राजा पुंज के 13 पुत्रों के संबंध में जो वृत्तान्त है वह ऐतिहासिक न होकर विशुद्ध कवि-कल्पना का ही उदाहरण है । कवि स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार करता है —

पुंज तणै तेरह सुत दिब पख ।
सुजि त्यांहूंत कमंध तेरह सख ।
प्रगटे जेण रीत प्रथमी परि ।
ऽवा विधि कहौं जुगति सुधि उच्चरि ।

और भी —

कोइक सुकवि इमकहै, वरस बह नृप किम वरणै ।
वेदव्यास वायकां, साख भारथ संभरणै ।।

कवि की उदारता

कविया करणीदानजी राज्याश्रित कवि अवश्य थे, किन्तु वे अपने आश्रयदाता के विरोधी पक्ष की सामर्थ्य एवं शक्ति को नजरअंदाज करने वाले नहीं थे । उन्होंने सरवुलन्द खां के योद्धाओं की साजसज्जा और उनके युद्ध-कौशल का सही वर्णन करके अपनी उदारता का परिचय दिया है । इस दृष्टि से कविया करणीदान का दृष्टिकोण अधिकांश डिंगल कवियों से एकदम भिन्न था ।

कृतियाँ : सामान्य परिचय

"सूरजप्रकास" सरीखे बृहद् प्रबन्ध-काव्य की एक वर्ष की अल्पावधि में रचना करने की अपूर्व क्षमता रखने वाले कविया करणीदान ने अपनी दीर्घायु में अनेक काव्यग्रन्थों का प्रणयन किया होगा, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु राजस्थानी साहित्य के अनेक ग्रंथों की भांति वे भी अज्ञात भंडारों एवं व्यक्तियों के पास शोध के अभाव में धीरे-धीरे काल के गाल में समा रहे हैं। अस्तु, अद्यावधि कवि की केवल निम्नलिखित कृतियाँ ही उपलब्ध हो सकी हैं :

1- सूरजप्रकास (प्रकाशित)
2- विरद शिणगार (प्रकाशित)
3- जतीरासा (अप्रकाशित)
4- अभयभूषण (अप्रकाशित)
5- स्फुट गीत (कुछ प्रकाशित-शेष सहस्रों अप्रकाशित)

"सूरजप्रकास"

"सूरजप्रकास" 7500 छंदों का एक वृहत् काव्य ग्रंथ है। इसमें मुख्य रूप से जोधपुर के महाराजा अभयसिंह द्वारा गुजरात के सूबेदार सरबुलन्द खां के विरुद्ध लड़े गये युद्ध का वर्णन है। प्रसंगवश पौराणिक एवं ऐतिहासिक आधार पर राठौड़वंश-वर्णन एवं अनेक अन्य विषयों की साधिकार चर्चा की गई है। महाराजा अभयसिंह के पूर्वजों एवं विशेष रूप से महाराजा अजीतसिंह के शासनकाल की घटनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ग्रंथ में वीररस की श्रेष्ठ अभिव्यंजना के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओं का प्रामाणिक एवं तत्कालीन सांस्कृतिक स्थिति का विशद अंकन किया गया है।

"सूरजप्रकास" ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से एक अभूतपूर्व ग्रंथ है। इसी तथ्य से प्रभावित होकर

साहित्यानुरागी एवं विद्वान् कवि मरुधराधीश महाराजा मानसिंह (वि. सं. 1860 से 1900) ने विपुल मध्यकालीन साहित्य में से केवल इसी को चुनकर इसके आधार पर सहस्रों कलमी चित्रों का निर्माण करवाया जो आज भी जोधपुर महाराजा के निजी संग्रहालय "पुस्तक प्रकाश" में उपलब्ध हैं ।

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने सूरजप्रकास का रचनाकाल दिया है :

सत्रैसै समत सत्यासिये बिजे दसमी सनिजीत ।
बदि कातिक गुण वरणिये, दसमी बार अदीत ।
वणियो गुण इक वरस विच, उकति अरथ अणपार ।
छंद अनुष्टुप करिउ जन, सत पंच सात हजार ।।

"विरद शिणगार"

जैसा कि कवि के जीवनवृत्त में उल्लेख किया गया है, "विरद-शिणगार" की रचना महाराजा अभयसिंहजी की आज्ञा के पालन हेतु की गई । महाराजा ने "सूरजप्रकास" "राजरूपक" एवं वखता खिड़िया के 166 कवित्तों के विस्तार को संक्षिप्त करने हेतु तीनों कवियों को आदेश दिया । वीरभांण रतनू और वखता खिड़िया तो अपने ग्रंथों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत नहीं कर सके, परन्तु कविया करणीदान ने अहमदाबाद युद्ध-प्रसंग को लेकर "विरद शिणगार" नामक छोटे काव्यग्रंथ की रचना कर डाली । प्रारंभ में महाराजा अभयसिंह द्वारा सम्मानित किए जाने का कारणं कवि की यही लघुकृति है ।

"विरद शिणगार" के विषय में अधिकतर विद्धानों का यह भ्रम है कि यह ग्रंथ "सूरजप्रकास" का सारांश है । परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है । "विरद शिणगार" एक स्वतन्त्र रचना है । कवि ने इसे "सूरजप्रकास" "रो तंत-सार" अवश्य कहा है किन्तु यह कथन विषय-वस्तु की दृष्टि से ही ठीक है, अन्यथा इस रचना की एक भी पंक्ति "सूरजप्रकास" से नहीं मिलती ।

"विरद शिणगार" 135 पद्धरी छंदों में लिखा गया खंड-काव्य है । प्रारम्भ में 1 दोहा एवं अन्त में 2 दोहे हैं । रचना का प्रारंभ

सरस्वती एवं गणेश वन्दना से हुआ है । इसके पश्चात् महाराजा अभयसिंह का गुणगान है । उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख करके कवि अहमदाबाद-युद्ध का वर्णन प्रस्तुत करता है । ग्रंथ की समाप्ति के पूर्व महाराजा अभयसिंह की अन्य विजयों का उल्लेख है । रचनाकाल का अंकन करके ग्रंथ की समाप्ति की गई है ।

सत्रहसै सतियास सक, ध्रुव अहमदपुर धाम ।
वर कवि कर्ण बखाण कर, सुभटां तणां संग्राम ।।

"विरद शिणगार" में युद्धवर्णन अत्यन्त ओजपूर्ण है । जीवनी-विषयक अंश में युद्ध-वर्णन के कुछ उद्धरण दे दिए गए है । युद्ध-वर्णन में त्रिवेणी का एक सुन्दर रूपक द्रष्टव्य है —

चढ़ रीस उठी जव मुरड़ चाय । पड़ ईस मनावे तेण पाय ।
घर हरै जटा खुल गंग धार । मेमटा रुधिर सरसत मझार ।।
प्राजक चख वेगम अंसुपात । जमना जल काजल वहृत जात ।
उणधार त्रिवेणी तीर आय । जूंझार हुवै सो मुगत पाय ।।

इसी प्रकार जनमेजय के नागयज्ञ का तथा पार्वती एवं गणेश का रूपक भी बहुत अच्छा वन पड़ा है ।

भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण एवं प्रसादगुणयुक्त है । एक उदाहरण देखिए —

पिंड फूटे छूटै रुधर पूर । सिर तुटै जूटै केक सूर ।
धड़ डोलै खांथा तेगधार । माथा मुख बोले मार मार ।।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि "विरद शिणगार" वीर रस के वर्णनों से भरा एक सुन्दर खण्डकाव्य है ।

जतीरासा

"जतीरासा" की रचना का उद्देश्य अन्यत्र वर्णित किया जा चुका है । इस ग्रंथ में जतियों के आडंबर, भ्रष्टाचार एवं दुराचार का नग्न चित्र खींचा गया है । अभी तक यह ग्रंथ अप्रकाशित है । इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं । राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान वाली एक हस्तलिखित प्रति में ग्रंथ का नाम "जैनज द्वार" दिया गया है ।

स्फुट डिंगल गीत

डिंगल गीत राजस्थान डिंगल-साहित्य की मौलिक एवं लोकप्रिय देन है । कविराजा बांकीदास का डिंगल गीतों के विषय में निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है :-

रीत सु डिंगल रूप में, चारण सुकव प्रचंड ।
कोड प्रकारां गीत में, मुरधर भाषा मंड ।।

वस्तुतः राजस्थानी के इस मौलिक छन्द "गीत" को चारण कवियों ने शताब्दियों से अपने सर्वप्रिय छन्द के रूप अपना कर विपुल मात्रा में डिंगलसाहित्य-भंडार की श्रीवृद्धि की है । डिंगल गीतों में राजस्थानी के मौलिक एवं लोकप्रिय शव्दालंकार "वयण सगाई" का अनिवार्य रूप से निर्वाह एवं शताधिक भेदोपभेदों में साहित्यिक छटा दृश्यमान है । अपने आश्रयदाताओं के अतिरिक्त सामान्य जनसमाज के शौर्य एवं औदार्यपूर्ण कृत्यों की स्मृति में रचे गये ये डिंगल गीत राजस्थानी के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक हैं ।

कविया करणीदान ने विविध प्रसंगों से संवधित सहस्रों डिंगल गीतों की रचना की है । ये गीत प्रमुखतः ऐतिहासिक घटनावली, प्रकृति-चित्रण, युद्ध-वर्णन, अस्त्र-शस्त्र एवं अश्व-गज के वर्णन से संवंधित हैं । उनके इन गीतों में जहाँ एक ओर सुन्दर सांग रूपकों का सम्यक् निर्वाह हुआ है, वहीं दूसरी ओर ओजपूर्ण अलंकृत शैली द्वारा घटना का चित्रोपम वर्णन प्रभावशाली रूप में अंकित किया गया है ।

कविया करणीदान मात्र कवि ही नहीं थे । वे प्रवुद्ध इतिहासकार भी थे । उन्होंने समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं का अपने डिंगल गीतों में सुन्दर चित्रण किया है । कविया करणीदान ने डिंगलगीत परंपरा को परिपुष्ट करते हुए अपनी अद्‌भुत कवित्वशक्ति द्वारा डिंगलगीतों की शृंखला में अपना अपूर्व योगदान दिया है । कविया करणीदान के ये गीत साहित्यरसिकों के साथ साथ इतिहासज्ञों के लिए भी अनुपेक्षणीय ऐतिहासिक स्रोत हैं ।

सूरजप्रकास - कथासार

"सूरजप्रकास" राजस्थानी भाषा का 7500 छन्दों का विशालकाय प्रबन्ध-काव्य है । पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं के सुन्दर संयोजन के साथ ही इसमें कल्पना और यथार्थ, इतिहास और काव्य का सुन्दर मेल है । प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में गणेश, सरस्वती सदाशिव, सूर्य तथा विष्णु की स्तुति की गई है । ग्रंथ के नामकरण की उपयुक्तता पर प्रकाश डालकर सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु से राठौड़ों की संपूर्ण वंशावली का वर्णन है । बीच में रामायण की कथा संक्षेप में उल्लिखित करके राजा पुंज के तेरह पुत्रों के जीवन की उन घटनाओं का वर्णन है जिससे राठौड़ों की विभिन्न शाखाओं का नामकरण हुआ है ।

"पुंज तणै तेरह सुत दिव पख, सुजि त्यांहूत कमंध तेरह सख ।"

राठौड़ों के पूर्वज राजा जयचंद का वर्णन थोड़ा विस्तार से हुआ है । विशाल सेना के स्वामी राजा जयचंद "दल पुंगल" की उपाधि से विभूपित थे । उन्होंने अटक के पार आठ मुसलमान शासकों को युद्ध में पराजित कर कन्नौज में बन्दी बना लिया । उन्हीं के वंशज सीहा, एवं रिणमल थे । रिणमल ने अपने भानजे मेवाड़ के राणा कुंभा के विद्रोहियों को पराजित कर उन्हें फिर सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । मेवाड़ में अपने अमित प्रभाव के फलस्वरूप वे षड्यंत्र के शिकार हुये और अठारह आक्रमणकारियों को मार कर वीरगति को प्राप्त हुए ।

रिणमल के पुत्र राव जोधा ने अपने रणकौशल से बहुत ख्याति अर्जित की । विक्रम संवत् 1515 की ज्येष्ठ सुदी एकादशी को उन्होंने जोधपुर दुर्ग की नींव डाली और उसके नीचे नगर बसाया ।

पनरैसे समत पनरोतड़ै, सुदी जेठ ग्यारस सनद ।
अवगाढ जोध रचियो इसौ, गाढपुर जोधांण गढ ।।

"भाग 1, पृष्ठ-251)

राव जोधा के उत्तराधिकारी राव सूजा ने यवनों के हाकिम को परास्त कर 140 तीजड़िया को उसके बंधन से छुड़ाया । इनकी चौथी पीढी में राव मालदेव हुए जो बड़े प्रतापी शासक थे । उन्होंने

मारवाड़ की सीमा का बहुत विस्तार किया । राव मालदेव के पौत्र राजा शूरसिंह का ग्रंथ में विस्तृत वर्णन है । मुगल बादशाह अकबर एवं जहाँगीर के समकालीन राजा शूरसिंह ने गुजरात एवं दक्षिण में बहुत विजय प्राप्त की । उनके पुत्र गजसिंह ने दक्षिण के खिड़कीगढ़ गोलकुंडा, आसेर, सितारा आदि को विजय कर बादशाही राज्य में मिला दिया और बादशाह द्वारा "दलथंभण" की उपाधि से विभूषित हुए । शाहजादा खुर्रम द्वारा जहाँगीर पर आक्रमण की योजना बनाने पर राजा गजसिंह ने अपने रणकौशल से उसे परास्त कर बादशाह को प्रसन्न किया ।

इन्हीं गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह ने शाहजहाँ के दरवारी एवं साले सलावतखाँ के द्वारा अपशब्द कहने पर भरे दरवार में उसके सीने में कटारी भोंक कर शाहजहाँ को आतंकित कर दिया था ।

गजसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह ने शाहजहाँ के विरुद्ध उनके पुत्र औरंगजेव के आक्रमण करने पर शाहजहाँ की ओर से भयंकर युद्ध किया । वाद में औरंगजेव के शासक वन जाने पर उसकी ओर से कावुल में जाकर पठानों पर विजय प्राप्त की और वहीं वीरगति को प्राप्त हुए । जसवन्तसिंह महान् योद्धा होने के साथ ही दर्शन के ज्ञाता एवं कवियों और विद्वानों का परम आदर करने वाले शासक थे ।

महाराजा जसवन्तसिंह के पुत्र महाराजा अजीतसिंह का "सूरजप्रकास" में विस्तृत वर्णन है । जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद राठौड़ वीर दुर्गादास द्वारा बालक अजीतसिंह के पालन-पोषण एवं संरक्षण तथा औरंगजेब से उनकी रक्षा के लिए किए गये युद्धों का विस्तृत उल्लेख "सूरजप्रकास" में है । वयस्क होने पर अजीतसिंह बड़े प्रभावशाली शासक के रूप में मारवाड़ की गद्दी पर बैठे । उन्होंने मारवाड़ को मुगलों के आधिपत्य से छुटकारा दिलाया और दिल्ली के राजनीतिक घटनाक्रम को अपने प्रभाव से प्रभावित किया । सैयद बन्धु फर्रुखसियर एवं उनके वंशजों की राजनीति को संचालित करने में उनका बहुत बड़ा हाथ था । दिल्ली में एक के बाद दूसरे शासक को सिंहासनारूढ़ करने में अजीतसिंह ने महती

भूमिका निभाई । उन्होंने अपने प्रभाव से हिन्दुओं पर लगे जजिया कर को हटवा दिया तथा हिन्दुओं की धार्मिक उपासना पर लगी सभी बाधायें दूर करवा दीं । सैयद बन्धुओं के पतन के बाद बादशाह ने महाराजा अजीतसिंह को दबाने हेतु विशाल सेना भेजी परन्तु महाराजा की शक्ति के सामने सेनापति मुजफ्फरखां, इरादतमंद खान, हेदरकुली आदि सभी को महाराजा से संधि के लिए बाध्य होना पड़ा ।

महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के बाद राजकुमार अभयसिंह का राज्याभिषेक बादशाह मुहम्मदशाह द्वारा दिल्ली में वि. सं. 1781 श्रावण शुक्ला अष्टमी को संपन्न हुआ । सूरजप्रकास में कवि ने महाराजा अभयसिंह के शासनकाल की कुछ प्रमुख घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है । इनमें से प्रमुख हैं, गुजरात के सूबेदार सरवुलन्द खां पर आक्रमण एवं युद्ध । इस युद्ध का अत्यन्त प्रामाणिक एवं सजीव वर्णन सूरजप्रकास में उपलब्ध है । ग्रंथ में सेना के संगठन, उसके विभिन्न अंगों के संयोजन एवं विभिन्न जाति के योद्धाओं द्वारा किए गये युद्ध का विस्तृत काव्यात्मक वर्णन है । कवि ने शत्रुपक्ष के योद्धाओं के वर्णन पर भी समुचित ध्यान दिया है । तत्पश्चात् सरबुलन्द खां की पराजय एवं संधि तथा ज़ीत की प्रसन्नता में मनाये गये आनन्द उत्सव के वर्णन के साथ ही ग्रंथ की समाप्ति हुई है । ग्रंथ में सेना-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन को प्रमुखता प्रदान कर युद्ध के अत्यन्त लोमहर्षक विवरण प्रस्तुत किए गये हैं ।

वस्तु-वर्णन

"सूरजप्रकास" इतिहास-संभूत रचना है । इस प्रबंधकाव्य में ऐतिहासिक घटनावली के साथ ही विविध प्रकार के वर्णनों का समाहार अत्यन्त कुशलतापूर्वक संपन्न किया गया है । इतिहास-प्रधान रचना होने के कारण कवि को अपनी उर्वर कल्पना का उपयोग करने का अवसर यदि कहीं मिल पाया है तो इन्हीं स्थलों में । परन्तु "रासो" में जिस प्रकार कल्पना एवं तथ्य का गड़बड़झाला हो गया है ऐसा "सूरजप्रकास" में कहीं नहीं है । वर्णनों में कल्पना

का उपयोग इतना ही किया गया है जिससे काव्यात्मकता का निर्वाह सम्यग्रूप से होते हुए भी इतिहास दूषित नहीं होता ।

कविया करणीदान का वस्तु-वर्णन बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक है । लोक एवं राज-समाज से संबंधित नाना प्रकार की वस्तुओं के वर्णन-प्रसंगों का इसमें समाहार हुआ है । सेना और हथियार, युद्ध और प्रकृति, रूप और आभूषण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन सभी के वर्णन उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति, कुशल उपमान योजना, सजीवचित्रसर्जन-क्षमता, उत्कृष्ट भावाभिव्यंजन एवं समर्थ सौष्ठव के जीवन्त प्रमाण हैं ।

सेना एवं अस्त्र-शस्त्र

ग्रंथ में सेना एवं अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन विस्तृत एवं व्यापक है । सैन्य-सज्जा, अस्त्र-शस्त्र, घोड़ा-हाथी ऊँट तथा अनेक प्रकार की युद्धरीतियों के ये कलापूर्ण चित्र हमारे सामने उस युग का जीता जागता चित्र अंकित कर देते हैं । अनेक स्थलों पर वर्ण्य-विषय समान होने पर भी शैलीगत नवीनता के कारण पुनरावृत्ति के दोष से सर्वथा बच गये हैं ।

सेना का वर्णन दो प्रकार का है—एक सामान्य और दूसरा विशिष्ट । सामान्य सेना-वर्णन संक्षिप्त तथा आलंकारिक है । कवि ने युद्धसंबंधी प्रत्येक प्रसंग को मनोयोग के साथ चित्रित किया है । सैन्य-वर्णन का एक प्रसंग द्रष्टव्य है —

ढळक्कै गजां चम्मरां क्रीब ढालां ।
भळक्के अणी भम्मरां त्रीछ भालां ।
खळक्कै सिलैपाखरां राड़ि खंगी ।
जळक्कै विचै धोम-सी दीठ जंगी ।
लळक्कै गजां पोगरां नाळ सोभा ।
भळक्कै मुखां सूरमां भांण सोभा ।

(भाग-3, पृ.-31)

अर्थात् सेना की अग्रिम पंक्ति के हाथियों के ललाट पर ढालें शोभा दे रही हैं और गजारूढ सैनिकों के हाथ में तीक्ष्ण भाले चमक रहे हैं । उनके सीने पर धारण किए हुए कवच खल-खल की ध्वनि कर रहे हैं । सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए कवच इस प्रकार दिखाई

देते हैं मानो अग्नि जल रही हो । हाथियों की सूंडें कोमलता के कारण इधर उधर लचकती हुई कमल-नाल के समान शोभा दे रही है, जिसे देखकर भ्रमर लोभित हो रहे हैं । योद्धाओं के मुख' सूर्य के समान दीप्तिमान् हो रहे हैं ।

रूपकों के माध्यम से किया गया सैन्य-वर्णन बहुत प्रभावशाली बन पड़ा है । ग्रंथ में सेना का घोर घटा के साथ बाँधा गया सुन्दर रूपक द्रष्टव्य है –

काळायण कठठे काल़-कीठ ।।
दुति सिखर भमर गजराज दीठ ।।
उडि गरद धोम चढ़ि आसमांण ।।
भमरंग दिसा दीसै न भांण ।।
पखरैतां कांठल़ भमर पाज ।।
गायंत गयंद नौबत्ति गाज ।।
हैमरां दादुरां कळळ होय ।।
जगि तोडां दमंग खिदौत जोय ।।

(भाग-2, पृ.-361)

अर्थात् काले काले हाथी इस प्रकार दिखाई देते हैं मानों आसमान में श्याम छटा उमड़ आई हो । धूल के कारण दिशायें अंधकारमय हो गई हैं और सूर्य भी दृष्टिगोचर नहीं होता है । कवचधारी योद्धाओं के हिलते हुए कवचों की ध्वनि तथा गरजते हुए हाथियों पर नोबत की आवाज बादलों की गर्जना के समान सुनाई देती है । घोड़ों की हिनहिनाहट मानों मेढ़कों की टर्र-टर्र ध्वनि है । तोप चलाने वाले सैनिकों के हाथ में जलते हुए पलीते मानो आसमान में चमकती हुई बिजली है ।

सूरजप्रकास में इसी प्रकार सेना के बहुविध रूपक विद्यमान है । सैन्य-वर्णन के साथ ही अश्व-सेना, गजसेना, उष्ट्र-सेना तथा तोपों के विस्तृत वर्णन ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। अश्वसेना-वर्णन में घोड़ों की सजावट, उनकी तीव्र गति, उनके विविध रंग, जातियाँ एवं उनकी प्रकृति का सूक्ष्म वर्णन होने के साथ ही उनकी स्वामिभक्ति, उनके वेगपूर्ण आक्रमण और शत्रुपक्ष का उनके द्वारा किये गये विनाश का वर्णन है । कवि ने दोनों दलों की अश्व-सेना का एक समान वर्णन करके अपने वर्णन को प्रभावशाली बना दिया है –

दै उवर टकर ढाहै दुरंग ।
तदि दुहूं दळां इसड़ा तुरंग ।
अति लीण लौह पतिध्रमी आंण ।
लहि ठांम ठांम चाढ़ै लगांण ।
औदकै निजर निज छांह आय ।
जुडतां गज चाचर चढ़ै जाय ।

(भाग 3, पृष्ट 1416)

अर्थात् दोनों सेनाओं के घोड़े इतने शक्तिशाली हैं कि अपनी वेगवती टक्कर से बड़े-बड़े दुर्गों को ढहा देते हैं । स्वामिधर्म में लीन ये अश्व अत्यन्त विशालकाय हैं एवं लगाम खींचते ही झपट पड़ते हैं । अश्वारोही की दृष्टि की छाया मात्र से ये उछल पड़ते हैं और हाथियों के मस्तक पर चढ़ दौड़ते हैं ।

अश्वों के अतिरिक्त हाथियों एवं ऊंटों का रूपवर्णन भी ग्रंथ में विस्तार से हुआ है । हाथियों एवं ऊंटों की विभिन्न जातियाँ, उनके रूप रंग, उनकी प्रकृति, उन पर सजी आकर्षक झूलें तथा उनकी रक्षा हेतु सजे विभिन्न शिरस्त्राणों का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन ग्रंथ में विद्यमान है ।

सेना-वर्णन के प्रसंगों में ही वीरों एवं मरणीक योद्धाओं के विविध चित्र भी सूरजप्रकास में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं । वीरों के धर्म, उनकी आन-बान, उनकी युद्ध-विजय की उत्कट लालसा एवं स्वामिधर्म-निर्वाह की उनकी ललक के अत्यन्त सुन्दर चित्र ग्रंथ में प्रस्तुत किये गए हैं । इन चित्रों में वीरों के आदर्श, उनके सात्त्विक मनोभाव, उनके युद्धोत्साह, उनकी मरणातुरता, शत्रुपक्ष-भंजन की उनकी अदमनीय लालसा आदि का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण ग्रंथ में उपलब्ध है ।

युद्धवर्णन में कवि ने अपनी विपुल ज्ञान-राशि को जिस कौशल के साथ निरूपित किया है, उससे वे सहज ही डिंगल-साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाने के अधिकारी हैं । "सूरजप्रकास" में स्थल-स्थल पर युद्ध वर्णन के प्रसंग बिखरे पड़े हैं और हर स्थल पर कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के दर्शन होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो समस्त "सूरजप्रकास" एक विराट युद्धदेश है जिसमें एक से एक उत्तम युद्धवर्णन की छटायें सुन्दरता से छिटकी हुई

हैं । कहीं तोपयुद्ध के करतब हैं तो कहीं शस्त्र-युद्ध का कमाल, कहीं तलवारों की झनझनाहट का ध्वन्यात्मक वर्णन है तो कहीं बन्दूकों के भेदने का गतिशील चित्रण है, तो कहीं तलवारों द्वारा हाथियों के भारी शरीर को काट डालने का आश्चर्यपूर्ण वर्णन, कहीं योद्धाओं के शरीर को लकड़ी के पाटों की तरह चीर डालने का वर्णन है, तो कहीं खड्ग द्वारा कवचधारी सैनिकों के कवच को भेद कर हृदय को बींध डालने का लोमहर्षक विवरण, कहीं अनेक तलवारों के संगठित प्रहारों को झेलते हुए कुशलता से शत्रुओं के संहार का वर्णन है तो कहीं शस्त्र-प्रहार से मृत्यून्मुख क्षत-विक्षत योद्धा के प्रलयंकारी युद्ध का अत्यन्त रोमांचकारी वर्णन । शस्त्रों के चलने के ध्वन्यात्मक चित्रण में कवि ने अलंकारों का चमत्कारिक प्रयोग कर वर्णन को अत्यन्त रोमांचकारी वना दिया है ।

युद्ध-वर्णन अत्यन्त सजीव, गत्यात्मक एवं स्वाभाविक होने का सबसे बड़ा कारण है—कवि के स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित होकर भीषण नरसंहार के बीच शत्रुओं के मस्तक को खड्ग की धार सैं काट-काट कर नरमुंडों के अम्बार लगाने का लोमहर्षक अनुभव । चारण कवियों की प्रमुख विशेषता है कि वे कलम और तलवार दोनों के समान रूप से धनी थे । इसी कारण नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के संचालन के सजीव चित्र पाठक को वीररस के उत्साहमय वातावरण में निमज्जित कर देने की अभूतपूर्व क्षमता रखते हैं । युद्धवर्णन का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

धड़ भूप "अभा" रं "विलंद" तणी घड़ रीठ झड़ज्झड़ खाग रमै ।
दळकंध कड़क्कड़ सीस दड़द्दड़ भीच लड़त्थड़ केक भ्रमै ।
घुब केक बड़ब्बड़, नृत धड़ध्धड़ चंडि गड़ग्गड़ रत्त चढै ।
"अभमाल" "विलंद" तणा मुह आगळ, लौह इसी विध जोध लड़ै।।
(भाग 3, पृ.-248)

अर्थात् महाराजा अभयसिंह के योद्धा सरबुलन्द की सेना से प्रलयंकारी तलवार चलाने का झड़ाझड़ खेल खेल रहे हैं । कड़क की ध्वनि करते हुए कंधे चकनाचूर हो जाते हैं, शत्रु सेना के मस्तक गेंद की तरह लुढ़क रहे हैं, योद्धागण लड़खड़ा कर गिरते हुए प्रलाप कर रहे हैं एवं मस्तकविहीन धड़ नृत्य कर रहे हैं । रणचंडी गटागट

रक्तपान कर प्रफुल्लित हो रही है । इस प्रकार महाप्राण अभयसिंह के शूरमा सरबुलन्द खां की सेना के सम्मुख प्रलयंकारी युद्ध कर रहे हैं ।

इस चित्रण में तलवारों के चलने, कंधों के कड़क कर टूटने, सिरों के गेंद की तरह लुढ़कने, योद्धाओं के लड़खड़ा कर गिरते हुए प्रलाप करने, मस्तकविहीन योद्धाओं के युद्धोन्मत्तकारी नृत्य करने तथा रणचंडी के गटागट रक्त पीने के ध्वन्यात्मक वर्णन कवि के वर्णन-कौशल, उत्कृष्ट शब्द-संयोजन एवं सजीव वर्णन के जीवन्त प्रमाण हैं ।

सामान्य युद्धवर्णन के प्रसंग कहीं-कहीं संक्षिप्त हैं तो कहीं विस्तृत । विस्तृत वर्णनों मे कवि इतना रम गया है कि उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं की झड़ी सी लगा देता है । विशिष्ट युद्ध-वर्णन में शस्त्र विशेष के प्रहार का वर्णन कवि का लक्ष्य है । तलवार, भाला, बन्दूक, बांण, कटार, तोप आदि विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार के प्रभावशाली वर्णन कवि के काव्य को अत्यन्त रोमांचकारी बना देते हैं ।

वीर रस के बहुविध रूप से अनेक शैलियों में चित्रण के साथ ही कविया करणीदान ने सांगरूपकों के माध्यम से युद्ध-वर्णन को अत्यन्त प्रभावोत्पादक बना दिया है । उनके "सूरजप्रकास" में प्रयुक्त सांगरूपकों में से प्रमुख हैं—बसन्त-होली रूपक, समुद्र रूपक, विवाह रूपक, लंका दहन रूपक, अश्वमेघ-यज्ञ रूपक, जनमेजय नाग-यज्ञ रूपक, बारात रूपक आदि । बसन्त रूपक का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है -

डसण जजर डोलचां, भळळ ऊजळळ भालां ।
साहि बाहि स्रीहथां, लाल समसेर गुलालां ।
पतंग स्रोणि पिचरकां, बोह मद धार दुबारां ।
खेलै पियै खिल्हार, पड़ै उजबक्क अपारां ।
पोटलां रीठ गुरजां पड़ै, सिव नारद हसि तिण समै ।
सिर विलंद हूंत "अभमल", सुपह-रण वसंत होली रमै ।।

(भाग 3, पृ.-251-252)

अर्थात् महाराजा अभयसिंह, सिर विलंद खां से रणोन्मत्त होकर इस प्रकार होली खेल रहे हैं । हाथियों की विशाल दंतावली और भालों

की उज्ज्वल अणियाँ मानो रंग से भरे डोलचे हैं । महाराजा के स्वयं के हाथ से चलाई जाने वाली तलवार से छूटता हुआ रक्त मानो रक्तिम गुलाल है, रक्त के छूटने वाले फव्वारे रंग की पिचकारियों से प्रवाहित रंग के सदृश हैं और हाथियों के मस्तक से प्रवाहित होने वाला मद मानों दूसरी-बार ओटाया हुआ "दुबार" मद है । दोनों पक्षों के योद्धा युद्धोन्माद से उन्मत्त होकर इस प्रकार लड़ रहे हैं और गिर रहै हैं मानों मदिरा के नशे में चूर व्यक्ति आनंदातिरेक में नृत्य कर रहे एवं गिर रहे हों । शस्त्रों का ऐसा प्रहार हो रहा है मानों गुलाल की पोटलियाँ फेंकी जा रही हों । ऐसे दृश्य को देखकर युद्ध-प्रेमी देवता शिव व नारद खिलखिला रहे हैं ।

युद्ध-वर्णन के साथ ही युद्धोत्सुक योद्धाओं के अनेक रूपचित्र कविया करणीदान के "सूरजप्रकास" में विद्यमान हैं । योद्धागण मस्तक पर लोहे का भारी शिरस्त्राण पहने, शरीर पर भारी जिरहबख्तर सजाये, हाथों में लोहे के दस्ताने और पैरों में लोहे के मोजे पहने पीठ पर ढाल एवं तरकस तथा कमर में छुरा एवं खंजर कसे आसमान में तलवार लहराते एवं भुजायें तोलते हुए स्थल-स्थल पर दृष्टिगत होते हैं । वीरता के उपासक कविया करणीदान ने वीरता एवं शौर्य से भरपूर योद्धाओं के व्यक्तित्व का चित्रण बड़े विस्तार से किया है ।

युद्ध-वर्णन के अतिरिक्त कविया करणीदान ने अपने काव्य-ग्रंथों में बहुविध वर्णन प्रस्तुत किए हैं । यथा दरबार-वर्णन, संगीत-नृत्य-भेद-वर्णन, षट्भाषा-वर्णन, पहलवानी एवं शिकार वर्णन, अन्तःपुर एवं रूप वर्णन, नगर एवं बाजार वर्णन आदि । इन वर्णनों में तत्कालीन स्थिति का प्रभावपूर्ण चित्रण उपलब्ध होता है ।

भाव-व्यंजना

कविया करणीदान वीर-रसावतार हैं और उनका "सूरजप्रकास" वीर-रसार्णव । उनके सभी ग्रंथ युद्धप्रधान काव्य हैं । तदनुसार आदर्श वीरत्व का उनमें श्रेष्ठ चित्रण है । वीररस के अतिरिक्त अन्य रसों का निरूपण भी कवि ने यत्र-तत्र किया है, परन्तु ये अन्य रस वीर

तथा महत् बनाने हेतु ही उनका समावेश हुआ है ।

उत्साह

"सूरजप्रकास" में उत्साह के उदाहरण पग-पग पर मिलते हैं । वंश-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, नगर-वर्णन, भोजन एवं महफिल-वर्णन के अतिरिक्त उनके काव्य-ग्रंथों का समस्त कथ्य वीररसपूर्ण है । सुन्दर वर्णन-योजना, विस्तृत विभाव-वर्णन, भावपूर्ण अनुभाव-वर्णन और उपयुक्त भाषा-प्रयोग से वीर रसाश्रित सभी वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं । उत्साह के इन वर्णनों को घृणा, भय, क्रोध एवं कुतूहल आदि स्थायी भावों से संपृक्त कर अत्यधिक प्रभविष्णु बना दिया गया है । कहीं-कहीं तो परस्पर विरोधी भावों तक को एक दूसरे का उत्कर्षक बना कर चमत्कारी रूप दिया गया है । इन वर्णनों में भाषा अत्यधिक सरल प्रसादगुण संपन्न होकर नदी के प्रवाह के समान प्रवहमान है । प्रत्येक वर्णन अपने पूर्व वर्णन से कुछ न कुछ भिन्नता लिए हुए पाठक के औत्सुक्य को निरंतर बनाये रखता है ।

कर्मोत्साह के मध्य वीरों की उक्तियाँ उद्दीपक होकर उत्साह-वर्द्धन करती हैं । कवि ने वीरोक्तियों को विविध रूप से चमत्कारिक रूप में निरूपित किया है । भुजाओं को आसमान में लहराते हुए, गगनस्पर्शी उत्साहित हृदय से मर मिटने एवं केसरिया करने की भावनाओं से युक्त, शत्रु-संहार कर वीरगति प्राप्त कर अप्सराओं को वरण करने की तीव्र भावना लिए, भीषण युद्ध करके भी जीवित रहकर "सिंभुजीवत" के विरुद को प्राप्त करने की बलवती आकांक्षा से युक्त, लाल नेत्र एवं पौरुष से उफनते हुए व्यक्तित्व लिए वीरों की उक्तियाँ पाठक के हृदय में उत्साह का सागर लहरा देती हैं । उनके काव्यग्रंथ इन उक्तियों से भरे पड़े हैं । यथा –

(1) बहसि "करण" बोलियौ, सुतण "राजड़" तिण मौसर ।
तोलि भुजां असमांन, तोल तरवार बहादर ।
ओरि तुरंग असुररां, जँगी हवदां लगि जाउं ।
सिर विहँडूं घण सत्रां, विखम निज सिर विहँडाऊं ।

(2) घण झेलूं खग घाव, सांम निज काम सुधारूं ।
सिर समपूं सँकरनूं, रंभ चौसरि गळ धारूं ।

जगतणी मोह माया तजूं, जिम गोपीचंद भरथरी ।
चढि रथां अमरपुर मझि चढ़ूं, अमरक्रीत करि आपरी ।।

(3) हाकलि असि हरवळी, अणी दल "विलंद" उड़ाऊं ।
खग झाटां खेलतौ, जँगि हवदां लगि जाऊं ।।

अर्थात् कोई योद्धा जोश से उफनता हुआ कहता है कि मैं यवनों के घोड़ों को काट-काट कर जंगी हाथियों के हौदों से जा लगूँगा तथा शत्रुओं के सिरों को काट-काट कर अपने शरीर को क्षत-विक्षत कर डालूँगा । अन्य योद्धा आसमांन में भुजाओं से तलवार तौलता हुआ कहता है कि शत्रुओं की सेना के बीच घोड़े को झोंककर ऐसा भीषण युद्ध करूँगा कि हाथी के होदों पर बैठे हुए मीरजादों का शरीर भालों की नोक से छिद जायेगा ।

युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामिधर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करना उनका कर्तव्य । युद्ध के भयानक वर्णन में कर्मरत वीरों के अनुभावों के गत्यात्मक चित्र अनूठे बन पड़े हैं । प्रचंडता, असीमित उत्साह, असंयत त्वरा तथा वीरता के मद से भरे हुए रणबांकुरे शत्रु-सेना में खलबली मचा देते हैं । कहीं तलवार के भीषण प्रहार से कवच खंड-खंड हो रहे हैं तो कहीं कटारी और खंजर कड़क्क की ध्वनि करते हुए शरीर को विदीर्ण कर रहे हैं । कहीं वीर सैनिक निरंतर खड्ग के प्रहार इस प्रकार कर रहें हैं मानों होली पर गेहर खेला जा रहा हो । तलवार से कटे हुए शिरस्त्राण धारण किए हुए आधे सिर इस प्रकार दिखाई दे रहे हैं मानों कोई बड़ा वृक्ष औंधे मुँह पड़ा हो । तलवार की धार से कट कर शरीर से खून इस प्रकार उफन रहा है मानों खांड़व वन में अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही हो । कितने ही सिर कट-कट कर पृथ्वी पर इस प्रकार लुढ़क रहे हैं मानों लोटण कबूतर पृथ्वी पर लोट लगा रहा हो । अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार की ध्वनि का गत्यात्मक चित्रण दर्शनीय है –

खैगक्क उचक्क खाटक्क खगक्क ।
काटक्क कटक्क झाटक्क झटक्क ।
बिजक्क बलक्क जुरक्क जरक्क ।
सेलक्क धमक्क भचक्क सहक्क ।

करक्क हाडक्क गुडक्क कड़क्क ।
खिंवै खँजरक्क पड़े खरड़क्क ।

शत्रु के धड़ को काटती हुई भाले की नोंक की सुन्दर उपमा भी दर्शनीय है ।

अणी धड़ कट्टि फबै फळ एम ।
जाळीमझि हत्थ सुहागणि जेम ।

बरछी-प्रहार का एक और सुन्दर चित्र देखिए—

पाखर फुटि पमंग, बोळ नीकळै बरच्छी ।
काढ़ै जांणै कमळ, जाळ, झीवर मझि मच्छी ।।
अति रुधिर धड़क्कै उछटै, टूक फड़क्कै हैमरां ।
तरवारी कड़क्कै बीज तक, हाड बड़क्के गैमरां ।।

तलवारों के प्रहार के सहस्रों गत्यात्मक चित्र उनके काव्य-ग्रंथों में विद्यमान हैं —

कमध करै केवांण, झाट दोय विहर झिलम्मां ।
विहर टोप सिर विहर कंगळ धड़ विहर कलम्मां ।
विहर सपख्खर जीण, अंग होय विहर अुत्तंगां ।
विहर कड़ा बजरंग, विहर दुतंग चौतंगा ।।
अंग सूर विहर अरधोअरध पमंग विहर पखराइयां ।
अगहटा जांणि कीधा उभै, भाई बंटा भाइयां ।।

ऐसे योद्धा जिनके पैर आंतों में उलझ रहे हैं, शरीर पर अनेक घाव लगे हुए हैं, बाल बिखरे हैं, वर्ण जिनका भयंकर हो गया है, भयानक मारकाट करने के कारण जो हांफ रहे हैं उनके शब्दचित्र अत्यन्त रोमांचक बन पड़े हैं ।

यवनों के मस्तक युद्ध-स्थल में झिलम टोप सहित भूमि पर गिर पड़े हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों उड़ते हुए तीतर पक्षी को पकड़ कर बाज भूमि पर गिर पड़ा हो ।

इस प्रकार कविया करणीदान ने अपने काव्यग्रंथों में वीरता एवं उत्साह के प्रसंगों का अत्यन्त लोमहर्षक वर्णन किया है । अनुभावों की विशदता कविया करणीदान की महत्त्वपूर्ण विशेषता है । वीरों की फड़कती भुजाएँ, उछलते हृदय, अस्त्र-शस्त्रों के तीक्ष्ण प्रहार अपने पराक्रम का हर्षयुक्त कथन एवं युद्ध के शतशः व्यापारों के अनेक

शब्दचित्र उनके काव्य में विद्यमान हैं ।

वीर रस के संचारी भावों का निरूपण उनके काव्यों में प्रभूत मात्रा में हुआ है । हर्ष, रोमांच, उग्रता, स्मृति, वितर्क, औत्सुक्य, आदि न जाने कितने संचारी भाव उनके वीररस-चित्रण में सहज रूप में उपलब्ध हैं ।

वीर रस के अतिरिक्त रौद्र, अद्‌भुत, भयानक आदि अन्य रसों की अभिव्यक्ति भी यत्र-तत्र उनके काव्यग्रंथों में विद्यमान हैं । राव अमरसिंह के प्रसंग में उनके रौद्र रूप की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । सलावत खां के द्वारा अशिष्ट वचन बोले जाने पर राव अमरसिंह के रौद्र रूप का वर्णन दर्शनीय है —

> उभै मिसल अंबखास, पड़ै घड़हड़ अणपारां ।
> राव जांणि नरसिंध, हलै करि दयंतविहारां ।
> नख जमढढ़ नीझरै, रुधर मुख चख रातंवर ।
> काळरूप विकराळ, "अमर" छिवतौ भुज अंबर ।

उनके काव्यग्रंथों में ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें रोष के कारण योद्धाओं का सूर्य के सदृश तीव्र रूप से जलने का, नेत्रों का रक्त वर्ण होने का, दांत और होठों के चवाने का तथा क्रूर दृष्टि से शत्रु पर टूट पड़ने का रोमांचक वर्णन है । रौद्र रस की निष्पत्ति करने वाले अनेक अनुभावों के साथ ही उपयुक्त शब्दसौष्ठव कविया करणीदान की महती विशेषता है ।

वीर एवं रौद्र के अतिरिक्त बीभत्स, भयानक एवं अद्‌भुत रस भी वीर रस के सहायक होकर "सूरजप्रकास" में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । हास्य एवं शृंगार की योजना भी उनके काव्यग्रंथों में वीर रस के सहायक रसों के रूप में हुई है । शृंगार का निरूपण अधिकतर उद्दीपन विभाव के रूप में हुआ है । कविया करणीदान की रचनाएँ अधिकतर युद्ध-प्रधान होने के कारण करुण रस उन्हें अभीष्ट नहीं था । मरण को पर्व मनाने वाले वीरों के लिए मृत्यु पर शोक करना संभव भी कैसे हो सकता है? वीर रस का विरोधी होने के कारण निर्वेद व्यंजना के लिए भी उनके काव्य में स्थान नहीं है ।

इस प्रकार "सूरजप्रकास" में वीर, रौद्र, बीभत्स, भयानक एवं अद्भुत रसों की सुन्दर व्यंजना हुई है । अन्य रसों का पूर्ण परिपाक सूरजप्रकास में उपलब्ध नहीं है ।

भाषा

कविया करणीदान का रचनाकाल विक्रम को 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का है, अतः राजस्थानी भाषा (डिंगल) के मध्यकालीन स्वरूप के दर्शन हमें उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं । सत्रहवीं शताब्दी तक आते-आते राजस्थानी ने एक समृद्ध भाषा का रूप धारण कर लिया था । वस्तुतः यह युग राजस्थानी भाषा एवं साहित्य का "सुवर्णकाल" है । इस दृष्टि से डिंगल भाषा के अत्यन्त विकसित परिनिष्ठित एवं साहित्यिक रूप को स्थापित करने में कविया करणीदान का योगदान सर्वाधिक है ।

कविया करणीदान की भाषा उत्कृष्ट राजस्थानी है । मध्यकालीन उक्त भापा की समस्त विशेपताएँ उनके काव्यग्रंथों में विद्यमान हैं । उक्त भाषां पर कवि का पूर्ण अधिकार है । किस रस में, किस प्रसंग में, कैसी स्थिति में, किस प्रकार की भाषा एवं शब्दावली का प्रयोग किया जाय, इस वात का कवि को पूर्ण ज्ञान है । युद्ध के विकट प्रसंग-वर्णन में कर्कश शब्दावली और परुषावृत्ति का आधिक्य, शृंगार चित्रण में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग तथा साधारण विवरण अथवा इतिवृत्त कथन में सामान्य भाषा का प्रयोग, ये ऐसी विशेषताएँ हैं जो उनके भाषाधिकार एवं औचित्य-ज्ञान की परिचायक हैं ।

युद्धवर्णन के प्रसंग में उनकी विकट शब्दावली द्रष्टव्य है —

(1) धमकनाळ धर धसकि, थाट परबत थरसल्ले ।
कमळ सेस भिड़ कमठ, दाढ़ दाढ़ाळ दहल्लै ।
परां सौक पक्खरां, धमक वागी घमराजां ।
अनळ पंख उड्डिया, गिलण जांनै गजराजां ।

(2) धकध्धक स्रोण चंडी पत्र धार, डकड्डुक पीवत लेत डकार ।

रणरणन ध्वनि करती शब्दावली में युद्धवर्णन का निम्नलिखित उदाहरण उनकी भाषा-कुशलता का श्रेष्ठ उदाहरण है ।

करड़क खग वीजळ बरड़क्क वगत्तर ।
कंध कड़क वरड़क कंगळ, खरड़क बहि खंजर ।
रत दरड़क काळिज रड़क्क, फरड़क बौह् फींफर ।

मधुर कोमलकान्त शब्दावली के दर्शन श्रृंगार वर्णन, अद्‌भुत चित्रण एवं गद्यखंडों में होते हैं । यथा —

सिंगार सोल सज्जयं । लखै सची सुलज्जयं ।
इसी न रंभ इंदरी । सझंत ग्यांन सुन्दरी ।
संगीत नृत्त सोहती । मुनेस हंस मोहती ।
अनंग रंग आतुरी । प्रिया नचंत पातुरी ।

सामान्य विवरणों एवं इतिवृत्त-कथन में प्रसाद गुण उनकी भाषा में सर्वत्र विद्यमान है ।

महल सेज नह रमण उमाहै । चौकी खास न खिलवति चाहै ।
कर दरवार न्याव नहिं कीजै । दांन सोळ दुज हथां न दीजै ।
प्याला सुरा पिवै नह पावै । भोजन पान कपूर न भावै ।।

इस प्रकार सूरजप्रकास की भाषा में प्रसंगानुकूल ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं । पात्रों के अनुरूप भाषा का रूप-परिवर्तन सूरजप्रकास की प्रमुख विशेषता है । मुसलमान पात्रों के वर्णन एवं कथन में कवि की भाषा में अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों का आधिक्य हो जाता है तथा शैली में भी स्पष्ट रूप से परिवर्तन लक्षित होता है ।

"इस उज्जै तुम इहां, जंग कर अमल जमावो ।"

मुगल बादशाह मौहम्मद शाह के दरबार का वर्णन करते हुए कवि की भाषा की छटा दर्शनीय है ।

"जम्मीन के ऊपर परवरदिगार का हुसन दिल्ली सहर जोगमाया जिसके दरम्यांन बावन वीर चौसठ जोगणी का बास । पातिसाहूं का तखत रुसनाई का पूर । जवाहर का तखत जवाहर का छत्र । तेज का अथाह ऐसे दिल्ली का साहिब जिस तखत पर बिराजे हैं महमंद साह साहिब का नायब पैकंबरूं की जात कहता है ।"

सरबुलन्द खां के दरबार के वर्णन में भी कवि ने इसी प्रकार की भाषा एवं शैली का प्रयोग किया है ।

"तिस बखत परवरदिगार कूं सिजदा करि महमंद मरतुजाअली कौ याद करि दाहिणै दसत सेती समसेर तौल, हुकुम फुरमाया । जो यारो दिल्ली के पातिसाह के हुकम सेती मुझ पर गुस्सा कर हिन्दुस्तान का पातिसाह जंग करणै कूं आया सो जंग करणै का मनसुभा ठहरावौ ।"

डिंगल कवियों पर प्रायः यह दोषारोपण किया जाता है कि उनमें शब्दों की तोड़-मरोड़ बहुत की गई है तथा भाषा में ओज लाने के लिए द्वित्व एवं संयुक्ताक्षरों का प्रयोग कर भाषा का रूप विकृत कर दिया गया है । वस्तुतः यह आरोप डिंगल कवियों एवं उनके काव्य पर लगाना उचित नहीं है । प्राकृत में पहले ही से जो द्वित्व एवं संयुक्ताक्षर चले आ रहे थे उन्हीं को इन डिंगल कवियों ने अपनाया है और फिर युद्ध वर्णन जैसे प्रसंगों में तो तुलसीदास जैसे महान् कवि ने भी द्वित्व एवं संयुक्ताक्षरों का भरपूर प्रयोग किया है । कवितावली के युद्धवर्णन में बरक्खत, करक्खत, वज्जत, गज्जत, विद्दरत का प्रयोग हुआ है । कविया करणीदान ने भी युद्धवर्णन में द्वित्व एवं संयुक्ताक्षरों का प्रयोग किया है परन्तु केवल छंदपूर्ति अथवा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं । निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है —

कमध करै केवांण, झाट दोय विहर झिल्लमां ।
विहर टोप सिर विहर, कंगळ धड़ विहर किलम्मां ।
विहर सपख्खर जीण, अंग होय विहर उत्तंगां ।
विहर कड़ा बजरंग, विहर दुतंग चौतंगां ।।
अंग सूर विहर अरधोअरध, पमंग विहर पखराइयां ।
अगहटा जांणि कीधा उभै, भाई बंटा भाइयां ।।

"सूरजप्रकास" से ऐसे सहस्रों उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें बिना द्वित्व एवं संयुक्ताक्षरों के प्रयोग के ओजपूर्ण चित्र प्रस्तुत किए गये हैं । जहां भी द्वित्व एवं संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है उससे प्रभावाधिक्य एवं चमत्कार ही उत्पन्न हुआ है ।

ग्रंथ में तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग है । कविया करणीदान का संस्कृत ग्रंथों का

अध्ययन अत्यन्त व्यापक था, अतः तत्सम शब्दों का प्रयोग ग्रंथ में प्रचुर मात्रा में हुआ है । डिंगल ने अपना शब्दकोश प्राकृत एवं अपभ्रंश से ग्रहण किया है; अतः इन भाषाओं के शब्दों के तद्भव रूप डिंगल में पर्याप्त मात्रा में आये हैं । कविया करणीदान के काव्यग्रंथों में भी तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है ।

कविया करणीदान अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा के भी ज्ञाता थे, अतः इन भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग उन्होंने काफी मात्रा में किया है । मुसलमान पात्रों के संवाद एवं वर्णन तथा मुगल दरबार के विवरण में इस प्रकार के शब्दों की बहुलता है । कहीं कहीं उन शब्दों का राजस्थानीकरण भी कर दिया गया है ।

अलंकार-योजना

डिंगल के अधिकांश कवियों की भांति कविया करणीदान भी अलंकारों के मोह में पड़कर अपनी रचनाओं को निर्वीर्य बनाने के हिमायती कभी नहीं रहे । अलंकारों को उन्होंने अपनी कविता-कामिनी की सौन्दर्य-वृद्धि का साधन मात्र ही माना है, उन्हें साध्य कभी नहीं बनने दिया । उनकी कविता में अलंकारों का सुन्दर प्रयोग सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु वह केवल पांडित्य-प्रदर्शन अथवा चमत्कार-सर्जन के लिए नहीं है । उनके काव्य में अलंकार सर्वत्र स्वाभाविक रूप में आये हैं, प्रयत्न-प्रसूत नहीं ।

कविया करणीदान का डिंगल पर अपूर्व अधिकार है । वह अपनी भाषा को काव्योचित रूप देने में अत्यन्त पटु हैं । अलंकारों का प्रयोग उन्होंने अत्यन्त कुशलता से किया है । "वयण सगाई" का प्रयोग डिंगल-काव्यशास्त्र के नियमानुसार प्रत्येक चरण में अनिवार्य है । कविया करणीदान ने "सूरजप्रकास" में "वयण सगाई" का कट्टरता से पालन किया है ।

"वय सगाई" के अन्तर्गत आदिमेल, मध्यमेल एवं अन्तमेल आदि सभी मेलों का प्रयोग होते हुए भी कविया करणीदान ने आदिमेल को उत्तम वयण सगाई के रूप में प्रमुखता प्रदान की है ।

(1) सोळ वरस वय सारं, सोळ सिंगार रूप अति सोभा ।
    विधि विधि जस विसतारं, सुभ वरदांन समप्प सरस्वति ।

(2) जहर विखम जारंग, भुजां धारंग भुजंगम ।
भाल तेज भारंग, जरा हारंग लसे जम ।

वयणसगाई के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण शब्दालंकार जिनका प्रयोग कवि ने किया है वे हैं —अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, श्लेष आदि । ये अलंकार उनके काव्यग्रंथों के पद-पद में वर्तमान हैं ।

शब्दालंकार के अतिरिक्त अर्थालंकार भी उनके काव्यग्रंथों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं । कवि की सबसे अधिक रुचि उपमा एवं रूपक में रही है । "सूरजप्रकास" में एक से एक सुन्दर उपमाएँ विद्यमान हैं जो परंपरागत न होकर सर्वथा मौलिक हैं । उपमा एवं रूपक के अतिरिक्त दृष्टान्त, उदाहरण, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा एवं भ्रान्तिमान् का प्रयोग कवि ने प्रचुर मात्रा में किया है । परन्तु कवि ने अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है । अलंकार सर्वत्र स्वाभाविक रूप से आये हैं । अलंकारों ने भावों को कहीं पर भी आच्छादित नहीं किया है ।

छंदोयोजना

"सूरजप्रकास" में कविया करणीदान ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं डिंगल के विविध छन्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल किया है । विषय एवं रस की दृष्टि से स्तुतिवन्दना के लिए गाहा, दोहा, छप्पय, पद्धरी एवं अर्द्धनाराच छंदों का प्रयोग है, तो ऋतु-वर्णन, प्रकृति-चित्रण, नखशिख-वर्णन तथा रूप-वर्णन के लिए दोहा, छप्पय, अर्द्धनाराच, तारक एवं पद्धरी छंद का प्रयोग हुआ है । युद्ध-वर्णन के लिए रसावला, इपताल, पद्धरी, कलहंस, त्रोटक, भुजंगी, मछिक, रोमकंद, छप्पय, सारसी एवं झूलणा छंदों का प्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है । हाथियों, घोड़ों, ऊंटों एवं बैल सज्जा के वर्णन हेतु छप्पय एवं पद्धरी छंद का प्रयोग है तो रौद्र रस का मोतीदाम, त्रकुटबंध एवं छप्पय में अच्छा परिपाक हुआ है । बीभत्स वर्णन के लिए छप्पय, भुजंगी एवं रसावला छन्द अपनाये गये हैं । दोहा, सोरठा एवं छप्पय तो प्रायः सभी विषयों के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

राजस्थानी के विशिष्ट छंद "गीत" का प्रयोग उनके स्फुट काव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है । इन गीतों में कवि का अप्रतिम अधिकार एवं सिद्धहस्तता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । राजस्थानी तुकान्त

गद्य की शैली "दवावैत" का प्रयोग शिकार, भोजन, महफिल वैभव एवं प्रकृति-चित्रण में बड़ी कुशलता से संपन्न हुआ है । उनके ग्रंथों में जहाँ कहीं छन्दोभंग दिखाई देता है वह या तो लिपिकर्त्ताओं की भूल अथवा संपादन की त्रुटि के कारण है । प्राचीन राजस्थानी डिंगल कविता लिखने में आधी मात्रा का विधान होता था और वह उच्चारण में नहीं गिनी जाती थी । डॉ. शक्तिदान कविया के अनुसार डॉ. टेस्सीतोरी द्वारा संपादित वचनिका में इस प्रकार के वर्णों को विशेष चिह्नों द्वारा अंकित किया गया है । अब ऐसे वर्णों को लिखने के विशेष विधान का परित्याग कर दिया गया है इसी कारण लिपिकर्त्ताओं एवं संपादकों द्वारा प्राचीन रचनाओं के लिखने में एवं संपादन में यह त्रुटि छंदोभंग के रूप में लक्षित होती है ।

सूरजप्रकाश के दवावैतों के रूप में राजस्थानी तुकान्त गद्य के सुंदर उदाहरण मिलते हैं । विद्वानों के अनुसार दवावैतों में खड़ी बोली की आद्यावस्था के दर्शन होते हैं । "सूरजप्रकास" में दवावैतों में अनुप्रास की अनुपम छटा, तुकों का सुन्दर निर्वाह, शब्दों का अपूर्व सौष्ठव तथा भाषा का अद्वितीय प्रवाह विद्यमान है । ग्रंथ के 61 पृष्ठों में दवावैतों के एक से एक सुन्दर उदाहरण उपलब्ध हैं । इन दवावैतों में कहीं बगीचों का वर्णन है तो कहीं शिकार का, कहीं गोठ का वर्णन है तो कहीं महफिल का, कहीं दरबार का वर्णन है तो कहीं पहलवानी का । भाषा की दृष्टि से ये दवावैत खड़ी बोली के प्रारंभिक रूप के श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । उदाहरणार्थ –

(1) गजराजूं की हळबळ । बाजराजूं की कळहळ । नाळूं का निहाव । साबळूं का सिळाव । त्रंबागळूं के डाके । जसोल्लूं के हाके । पैदलूं की हळबळ । ढालूं की ढळक । महीमुछट रजडंबर का घटाटोप । तिमर का चढ़ाव । भाद्रवे की अमावस घटा का बणाव ।

(2) ऐसा गढ़ जोधांण और सहर का दरसाव, जिसके चौतरफ कौं बगीचूं का डंबर और दरियाऊं का वणाव ।

दवावैतों में खड़ी बोली की कारक विभक्ति "ने" का प्रयोग मिलता है, यथा –
"जिस बखत हवालगीरूं ने सलाम बजाय असवारी का सरंजाम सब हाजर किया ।"

राजस्थानी एवं हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान् पं. नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार संभवतः "ने" का सबसे प्राचीन प्रयोग इस ग्रंथ में ही हुआ है ।

मध्यकालीन राजस्थानी भाषा की उच्चारणसंबंधी समस्त विशेषताएँ "सूरजप्रकास" में उपलब्ध हैं । "ळ" का प्रयोग, "न" के स्थान पर "ण" का प्रयोग, अनुस्वार की प्रवृत्ति, तालव्य "श" के स्थान पर दंत्य "स" का प्रयोग, "य" का उच्चारण "य" और "ज" दोनों रूप में, स्वरभक्ति एवं संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति, ह्रस्व को दीर्घ करने हेतु वर्ण का द्वित्त्व प्रयोग एवं "र" का स्थान-विपर्यय - ये सभी विशेषताएँ ग्रंथ में विद्यमान हैं ।

"सूरजप्रकास" में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग भावों को अधिक स्पष्टता प्रदान करने हेतु किया गया है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(1) जिकौ करूं ऊचळो, जंग करि लूंण जसा रो ।
(2) उण वार लोह मुंहगो हुवो, सोना ही हूंता सरस ।
(3) चित दूध फट्टा चाय, जो फेर नहीं मिळ जाय ।
(4) ऊजळा करूं पीला अक्षत, असुर विहंड खग ऊजळां ।
(5) पूळा बळती मझि पड़े; झळहक घ्रत झाळा ।

नमक का ऋण चुकाना, सोने से भी लोहे का महंगा होना, फटे दूध का फिर न मिलना, पीले चावल को उज्ज्वल करना, जलती आग में घृत डालना लोकोक्तियों का प्रयोग उपर्युक्त पंक्तियों में बड़ी कुशलता से किया गया है । ऐसे अनेक उदाहरण "सूरजप्रकास" से दिए जा सकते हैं ।

अस्तु, "सूरजप्रकास" में कविया करणीदान की भाषागत चित्रोपमता, गत्यात्मकता, अनुरणनात्मकता के साथ ही सरसता एवं प्रभविष्णुता के दर्शन स्थल-स्थल पर हो जाते हैं ।

परिशिष्ट-1

"विरद सिणगार" से

(छन्द पद्धरी)

तद हलै विदा हुय मूँछ तांण । जळ जेम ऊझळे समंद जांण ।
खैड़ैचै खडिया थाट खूर । सत्रवां काळ विकराळ सूर ।।

गाजिया नगारा गयण गाज । भूमी एवासी गया भाज ।
गैमरां हैमरां थीय गोड़ । तरवरां झगरां लोह तोड़ ।।

लोहरां लंगरां झाट लाग । अधफरां गिरां तर झड़े आग ।
मेवास तूटगा मगज मेट । फूटगा गिरंद हैताळ फेट ।।

तूटगा नदी सिर नीर त्रास । खूटगा हुवा चौगान खास ।
उड़ गया सहर घर छोड़ आथ । सिंधलां देवडां तणां साथ ।।

चाळीस कोस हैजम चलाय । जाळीस दरत वाळीस जाय ।
रच कियो धूहंडा भड़ां राव । देवड़ां भड़ां माथै दवाव ।।

सीरोही ऊपरां खीवसार । आवूधर धूजै गिर अढार ।
अर्बुदां तणा जम्मात ईश । सरदा जिम आंणै चणा सीस ।।

तांणियो आज सरवूद ताय । जांणियो आज अरवूद जाय ।
कदमां लग निजर सलांम कीध । डम डोल राव ऊमेद दीध ।।

जिण ठांस अभै लिखिया जबाब । नग उमग करै लड़बौ नवाव ।
खग तोले बोलै विलँद खांन । मैं झैलूँ पड़ता आसमांन ।।

वाधा हर नाहर जेण बेर । घांसा हर थाहर लीध घेर ।
धुब तोप सघम त्रंबाल ध्रीह । बहसिया चाल बांधम अबीह ।।

विकराळ काळ मुगली व्रजाग । खटपटी आंण रण बीच खाग ।
खर्राय उडी हय पदन खेह । मैंडियो अहमदपुर अगन मेह ।।

अति छूटे गोळा रण अखत्र । नव लाख जांण तूटे नखत्र ।
मच्छजलै सांवरथ नदी मांय । कळकळें नीर भ्रत जिम कड़ाय ।।

हठ नाल पेठ बाजार हाठ । प्राजळै महल चंदण कपाट ।
चाचरे गयण चक चूर चोट । कांगरां अंबारथ भुर्ज कोट ।।

नभ धरां घूमरां भड़ निराट । घूमरां उडे भिड़ भिड़ज घाट ।
छूटिया प्रधारक अति छछोह । बावनां चन्नणां लियण बोह ।।

नह जोग पकड़बो गढ़ नवाब । हाथियां चढ़े लड़बो हिसाब ।
संज कोट भोमिया रण सजाय । अमराव लड़ै सब खेत आय ।।

पदमणी दिलीवर होण प्रीत । साजादा जुटे रण सरीत ।
मूरमा लड़ै चवड़ै संभाल । वेगमां घसे पड़दा विचाल ।।

जोधा हर लिखिया ये जवाव । निरखिया वाचिया श्रव नवाब ।
कर छुटी बांण चिल्लै कवांण । वांलिया जहर अहंकार वांण ।।

लागणा कमध रा वयण लाग । ऊठियौ जांण घृत सींच आग ।
कोपिया किया फण फेत कार । दावियां पूंछ जिम कालिंदार ।।

चख चोल भाल विकराल चूंच । कल चाल प्रगट दाढाल कूच ।
रोसाळ मिले ग्रीखम रसम्म । चिन्ता विडाल नाहर चसम्म ।।

सारका कोट अंतक समान । मारका वहादर मुसलमान ।
पोसाक सिलै ऐसाक पूर । गिर कंध छाक पौरुप जरूर ।।

बे बे कबांण भूथांण बंध । असमान छिबत रोसांण अंध ।
चख मच्छी रंध्र छेदे चकास । उड़ता विहंग वेधे अकास ।।

रीझाय हुर सुम राग रंग । जम हूंत करै खीजाय जंग ।
पीजाय भठी इक सुरापान । भख जाय अर्द्ध भैंसा भयान ।।

रगत री जोस-खग लाल रंग । बगतरां पोस उड्डै बरंग ।
तोटणा बरम घट दम तुटंत । लोटणा कबूतर जिम लुटंत ।।

मंजरां कलेजां सेल मार । पंजरां खंजरां करय पार ।
काल रै लाल रै जीव केक । हाक रैं डाक रै सूर हेक ।।

पिंड फूटै छूटै रुधर पूर । सिर तूटै जूटै केक सूर ।
धड़ डोलै खाथा तेग धार । माथा मुख बोलै मार मार ।।

धिन धिन रवि उचरै धाड़ धाड़ । राठौड़ मुगल इम करत राड़ ।
वर अछर विजै वर जैण वार । हूरां वर बरिया सर हजार ।।

"सूरजप्रकास" भाग-1 से

(छंद अर्द्धनाराच)

सिंगार सोल सज्जयं । लखै सची सुलज्जयं ।
इसी न रंभ इंदरी । संझंत ग्यांन सुंदरी ।।

संगीत नृत्त सोहती । मुनेस हंस मोहती ।
अनग रंग आतुरो । प्रिया नचत पातुरो ।।

कुलीन नारि केकयं । आणंद में अनेकयं ।
सुहाग भाग मूं भरी । अनेक राग उच्चरी ।।

इसी जवांण उच्चरै । किलोळ कोकिला करै ।
प्रफुल्लयं प्रकासयं । हसत के हुलासयं ।।

करंत के किलोहळं । महा उछाह मंगळं ।
सझै इसी सहच्चरी । उरःवसी न अच्छरी ।।

(छन्द भुजंगप्रयात)

भिदै जाळियां रूप सोभा भळक्की ।
वणै वीजळी जांण आभै वळक्की ।
मदोमत्त गौखां चढ़ी हंस मोहै ।
सची इंदरां मिंदरां जांण सोहै ।।

हरी केसरी बोळ कुंकूं हळद्दं ।
जठै मोतियां धार वूठै जळद्दं ।
इसा रंग उच्छाहसूं रांम आया ।
बधे मांत कौसल्य आए वधाया ।।

सुमंत्रा अनै केकई मात साई ।
भली भांत वध्धाविया च्यार भाई ।
वहू च्यार पगां लगै जैण वारै ।
सुमंत्रा अनै केकई कोसल्यारै ।।

हसै दीध आसीस आणंद हूंती ।
अखै-भाग सौभाग हो पुत्रवंती ।
जुवा खेल जीता हथोहत्थ जूटा ।
खुभै छेहड़ा तेहड़ा तांम खूटा ।।

जड़ाऊ नगां मिंदरां हेम जाळी ।
सझै सेज साहेलियां चित्रसाळी ।
वणै ऊजळी सेज एहो विराजै ।
लखै खीर सांमंदरा फेण लाजै ।।

जगाजोत हीरा मणी दीप जग्गै ।
लखां भांत तो गंध सांमीर लग्गै ।
चियारै वसै मंदरां भ्रात च्यारै ।
प्रिया च्यार आए जठै हेत प्यारे ।।

गीत त्रकुटबंध

इम वयण सुणि कपिरावरा, रघुवीर हालकि वंदरा,
दौड़िया लंका लियण दारुण, वधे कपि विकराळ,
हुय बौतकारां हौफरा, घर अंबर थरहर धरधरा,
वरतूर त्रंब सर अडर वीफर
भेर सँख सुर गहर धर भर
अमर वर रथ सोक अपछर
वीर हर कर डंबर रिखवर
नहर धर पर घोख नाहर
धुंवर रज भर झँखर तप धर
सर जहर उडि धोम धर सर
रीठ तर पडि वजर गिरउर
चौ तरफ घमचाळ ।। 1.

तदि मत्रि संभरि महिपती, रणि दीठ रांमण रघुपती,
कांगुर कांगुर दीठ बहु कपि, लूंबिया धक लागि,
मद-गंध जिम सँक नहि मनै, अति हाकले असुरांणनै,
दौड़िया खळ दळ सबळ दमगळ
छिब कमळ नभ सकळ बळछळ
हुबि जुगळ धुबि लोह झळहळ
विमळ जळसर फूटि वळवळ
बहळ ससियळ धमक साबळ
वह कळकळ प्रबळ वीजळ
चकळ इळतळ व्रितळ चळचळ
मंगळ झळ चंड धमळ मंगळ

विढै सूर व्रजागि ।। 2.

बौह पड़ै धड धड़ बेहड़ा, जुधि लड़ै भड़ जम जेहड़ा,
जुध-दुंद राघव अन इंद्रजित, भयांणक पड़ि भार,
उण वार रत नद ऊझलै, हुय हाक धर गिर हलहलै,
झड अनड उड रव बांणि बहिझड़,
उरड अपहड दुजड औझड़
कर डंमर गड़ बरड कर धड़
लुड़त तड़फड़ जुटत लड़थड़
बढि कँधड़ मुख करत बड़बड़
फरड़ फिंफरड कळिज फड़फड़
फील घड पड ग्रझड झड़फड़
हुय ड़ड रत मुनंद हड़हड़

पड़े दळ अणपार ।। 3.

सत्र हणै बळ समराथरा, रिण लड़ै भड़ रुघनाथरा,
तदि लखण अंगद सुग्री हणवंत, नील नळ नर नाह,
जामवंत क्रुध झळ जळहळी, सुक्खेण मयंदह सतबळी,
कपि कटक हूचक कटक दैतक
उरक बेधक सरक अैतक

अँतक तक भड़ भचक इक इक
पड़ि जरक मुद गरक पासक
धमक सेलक बँबक धकधक
तदि उवकि पत्र चँडिक त्रपतक
चहक पावक वभक चहुं चक
तद अरक रथ थरक कौतिक
उदधि रण अणथाह ।। 4.

बौह घरट जुधि ऐह बांणरौ, रचि गयौ अद्र सट रांणरौ,
कूंभिला पूजण लगौ कूंवर, जठ कुंभक्रण जागि,
वधि रांण सुवप वधारियौ, असमांण छिबतौ आवियौ,
कर सूळ विकटह, सुभट कौचट
रांम थट झट झपट रौझट
पछट वज्रघट कुघट ऊपट
रँगट भट फुट भ्रकुट मरकट
कुंळट नट वट उछट कटकट
गरट गजधर अघट गाहट
ग्रध झपट बहु मांस गटगट
नहट हट स्वर कुँभट नीछट
मिळे हँस स्रुगि माग ।। 5.

सर पहर अठ जुध सारियौ, मेघनाद लछमण मारियौ,
सझि अंसख दळ बळ सबळ दससिर, आवियौ अवनाड़,
स्रीरांम खळ हुय सैंफळा, हुब बांण बहजळ झळहळा,
मँड घमँड जुध थँड विहँड रुँडमुँड
झुँड भ्रकुँड चँड त्रिपत ग्रध झुँड
सिँहँड ध्वज मुख वयँड धजसँड
प्रचँड रूँडमुँड माळ परचँड
खँड विहँड पँड वयँड खँडखँड
उचँड नवखँड तरँड ऊडँड
चँड कुमँड प्रभ वंह सर चँड
पड़ै घाट पहाड़ ।। 6.

इक उभय दस अयतांणियं, पमंगेस गज पिसणाणियं,
धर पड ऊठ कबध इक तदि, कोटि इसा इकराल,
उठंत कमंध उदारय, तदि वज इस टंकारय,
रण बांण घण सझि असण वरसण
करि प्रसण घण अतण कणकण
कुळ हतण इंद्रजितण कुंभक्रण
मँडण पण करि हणे रांमण
वरण रँभ क्रत सुमण वरखण
मिटण दुख ग्रह बँधण मोखण
सरण असरण ब्रदण साझण
टँकर वण किय वजण दिन तिण

वार तेर विशाळ ।। 7.

जळ इम्रत थाट जिवाविया, लज सील सुध स्रिय लाविया,
व्रवि वभीखण लँक राज रघुवर, आविया अवधेस,
कुल मिळे उच्छब बोह किया, अति धमळ मँगळ अजोधिया,
अनँग छबि चँग उमँग अँग अँग
वजि म्रदँग चँग उमँग अँगअँग
न्तँग रित अँग करँग नादँग
रस तरँग बह तरँग रँगरँग
रजँग नृप अँग सुरँग चतुरँग
सीत सँग करि खतँग सारँग
मात चरणँग करँग प्रणमँग
सुजस गँग रँग कथँग सरबँग

नमौ अवधि नरेस ।। 8.

सूरजप्रकाश, भाग-2 से

तळावां रौ वरणाव

(दवावैत)

अब दरियाऊंकी तारीफ सो कहिकै दिखाइ । जगजीत जौधांणके दरियाव कैसे । अभैसागर बाळसमंद दोऊ मांनसरोवर जैसे । अम्रितके समुद्र तैसे लहरूंके प्रवाह छाजै । जिनका रूप देखे सै छीरसमुद्रका गुमर भाजै । गंभीर नीर तिमतिमंगळ ग्राह । थाग तै अनेक पावै नहीं थाह । सारस बतक मुरगाबी बक खेल संजे । हरख नचंत तीर खंजनकुमार हुंजे । छहूं रिति जिन्हूंके तट परि व्रहुमग्यांनी सिध मुनिराज छावै । मांनसरोवर के भौळै भूल अनेक (क) लीलंग आवै । ऐसे दरियाऊं के वीच में जिहाज सते से धरवाय । चंदणी विछायत करवाय महताबी जरदौजी के बंगळे समीयांने तणवावै । तहां स्री महाराजा राजराजेस्वर नरलोक के इंद्र छभा संजुत विराजमांन होय मजळस वणवावै । रस-कवितूंकी चरचा रंगराग अपार । कुमुदाँ की फूलूं पर भंवरू का गुंजार ।

ऊँटां रौ वरणाव (छप्पय)

नवहत्थी झोकरा, मसत फीफरा भरारा ।
बगलां उरळी बिहूं, बगलि नीकळै छिकारा ।
रँग केइक रातड़ा, भसम धूंहर भमराळा ।
जटा जूट ऊजळा, केइक भूरा केइ काळा ।
मिळि रींछ रूप अध्रियांमणा, जकस जिहाजां जम जिसा ।
झोकियां सिंधु नुखतां झटकि, अंधकंध राकस इसा ।।
रब्बारां थप्पले, घग्घ पाकेट भयंकर ।
नेसां चसळक नयण, झाळ झागूंडां नीझर ।

आका रीठ कुरीठ, वयॅड छोडे वेछाड़ां ।
इसा दीठ अवनाड़. पीठ ले हलै पहाड़ां ।
कत्तार भार भर कठठिया, करै गाज झंझट करै ।
हालिया जांणि सामंद्र हूं, भाद्रव वादळ जळ भरै ।।

हाथियां रौ वरणाव (छप्पय)

लळवळतां पोगरां, पाय खळहळता लंगर ।
झळहळतां चख झाळ, चोळ भळहळतां चाचर ।
धरा धूळ धकरूळ करै, फूँकार कराळां ।
ग्रहि उखलै गैतूळ, तूळ जिम मूळ तराळां ।
नेजां दकूळ उड़तां निहंग, हसत झूल मिळ हालिया ।
कुळ असट गिरंद जांणै सकळ, थावस सुज जंगम थिया ।।

सूरजप्रकास भाग—3 से

सेना रौ वरणाव (छंद भ्रुजंगी)

ढळक्कै गजां चम्मरां क्रीब ढालां ।
भळक्कै अणी भम्मरां त्रीछ भालां ।
खळक्कै सिलै पाखरां राड़ि खंगी ।
जळक्कै विचै धोम-सी दीठ जंगी ।।
लळक्कै गजां पोगरां नाळ लोभा ।
भळक्कै मुखां सूरमां भांण सोभा ।
गुड़ै बे दळां आगळा तोप गाडा ।
जठै बांण ग ोळां सराजांम जाडा ।।
भयाणंख गाडा किता जूंग भारू ।
दळां गोळियां पूर सांमांन दारू ।
जळाबोळ हीलोळ हालंत जाडा ।
अणी आरबां पूरबां थाट आडा ।।
अरोहै किता जूंग बेछाड़ अंगा ।
चखां चोळबोळां हथां रांम चंगा ।
तठै दूंग तूटै धिखै आग तोड़ां ।

घणूं नाळ ताळां वजै नास घोड़ां ।।
झड़ै फींण घोड़ां मुखे सेत झारा ।
तिकै जांणि ऊगा धरा वीज तारा ।
उठै हाथियां ऊपरा धज्ज उड्डी ।
गिरां ऊपरा ऊछळे जांणि गुड्डी ।।

(छंद सारसी)

धुबि राग सींधव बंब धूसां, तूर भेरि त्रहक्कऐ ।
जोगणी चवसठि पीर जय जय, चंड वांम चहक्कऐ ।।
हुवि नास सास ब्रहास धमहम, खोणि धम धम हैखुरां ।
घूघरां पाखर रोळ घम घम, झोळ झम झम झज्झरां ।।
झड़वांण खड़हड़ ग्रीध झड़फड़, भूत खेचर भूचरा ।
सीकोत्र डाकणि मिळ॑ साकणि, करै रास भयंकरा ।।
अरड़ाव घोर अंधार औद्रव, रूप रौद्रव राहरा ।
घण ईस हौफर करै घायल, निस गिरव्वर नाहरा ।।
"अमर" रौ "मोहकम" रा असूरां, वह हणै धड़ वेहड़ां ।
खग झाट जुधि होळियार खेले, हरखि जांणि डंडेहड़ां ।
धमजगर असिमर फूलधारां, उडै कमधज ऊपरां ।
सिवराति पूजै जांण संकर, भूत-गण भैरा हरा ।
सिर उडै फूटै वहै स्रोणित, लोहि "हठमल" सुत लड़े ।
जटहूंत धारा छूट जांणै, सदासिव गंग सांपड़े ।।

(युद्ध-वर्णन)
(दूहौ)

त्रिहुंवै घड़ "अभमल" तणी, अर घड़ "विलँद" असाधि ।
जूटै जिम, वरणीजियै, वीजळ झाटां वाधि ।।

(छंद रोमकंद)

घड़ भूप "अभा"र बिलंद तणी घड़, रीठ झड़ज्झड़ खाग रमै ।
दळ कंध कड़क्कड़ सीस दड़द्दड़, भीच लड़त्थड़ केक भ्रमै ।
धुअ केक बड़ब्बड नृत्त धड़ध्धड़, चंडि गड़ग्गड़ रत्त चड़ै ।
"अभमाल" बिलंद तणा मुह आगळ, लोह इसी विध जोध लड़ै ।।१।।

होय रिख हड़ाहड़ पावहथज्झड़, घूम त्रवध्धड़ मेछ घड़ां ।
तस रूप तड़त्तड़ नीझक नज्झड़, तूटत अंतड़ रोद तड़ां ।
फिंफराळ फड़फ्फड़ कूद कळज्झड़, आय भड़ब्भड़ मल्ल अड़ै ।
"अभमाल" "विलंद" तणा मुह आगळ, लोह इसी बिध जोध
लड़ै ।।२।।

हाथियां धड़ हूचक झूळ अकज्झक, रंभ तकत्तक हूर रहै ।
करि केयक कंतक ऊझक अंतक, वींद विमांणक धारि बहै ।
आछटै खग सूर बिछाहड़ ऊपर, पाहड़ ऊपर वीज पड़ै ।
"अभमाल" "विलंद" तणा मुह आगळि, लोह इसी विध जोध
लड़ै ।।३।।

बोहौ सीस उडक्क हिचक्क उवासक, अंधक केड हुचक्क उडै ।
झुकि जीह सकल्लर नारंग झल्लर, रल्लर वासग जेम लुडै ।
हुचकंत पटंत फटां भ्रगुटां हिक, घाव करे किरि लोह घड़ै ।
"अभमाल" "विलंद" तणा मुख आगळि, लोह इसी विध जोध
लड़ै ।।४।।

उपराळ हौदाळ लंकाळ चढै अति, काळ कराळ झंळां भभकै ।
वहि खाळ रत्राळ ग्रिझाळ परां वजि, छाक बंबाळ लंकाळ छकै ।
मतिवाळ कराळ कराळ महाबळ, जोर भुजाळ धराळ जड़ै ।
"अभमाल" विंलद तणा मुंह आगळि, लोह इसी विध जोध लड़ै ।।५।।

रवताळ रौदाळ रोसाळ महारिण, क्राळ खंडाळ आताळ करै ।
झिलमाळ कंधाळ कराळ पड़ै झड़ि, धू मझि माळ जटाळ धरै ।
जटियाळ छुटाळ भरै पत्र जोगणि, पै जिम खाळ रत्राळ पड़ै ।
"अभमाल" विलंद तणा मुंह आगिळ, लोह इसी विध जोध लड़ै ।।६।।

करि काळ भड़ां तिह काळ कितां, करिमाळ झड़ां जरदाळ कटै ।
धमचाळ अंत्राळ पंगा विचि धौसळि, लूथ बथांळ हुवैन लटै ।
प्रतिमाळ कराळ जडंत धड़ां पर, झाळ चखां विकराळ झड़ै ।
"अभमाल" विलंदतणा मुंह आगळि लोह इसी विध जोध लड़ै ।।७।।

करिमाळ झुलाळ बंगाळ घणा कटि, के पखराळ झंपाळ कटै ।
विकराळ मंसाळ हाडाळ वळोवळ, पंखणि गाळ लियै झपटै ।
रणताळ संपेखंत वाग कसै रथ, खैंग क्रनाल जठै न खड़ै ।
अभमाल विलँदतणा मुंह आगळि, लोह इसी विध जोध लड़ै ।।८।।

धमछट्ट विकट्ट गरट्ट पड़ै धड़, घट्ट उछट्टत भट्ट घणा ।
होय पट्ट उपट्ट चौसट्ट पियै हद, तट्ट उपट्ट नरद्द तणा ।
खळकट्ट उछट्ट कंधट्ट कटै खग, खंजर दट्टत हंस खड़ै ।
"अभमाल" विलँद तणा मुंह आगळि, लोह इसी विध जोध लड़ै ।।९।।

छप्पै कवित्त

एक वार ओरियौ, झाट वीजूजळ झाड़ै ।
रोद थाट रोसंग, प्रिसण पनरहसौ पाड़ै ।
विखम दूसरी वार, ऊक झल खाग अताळे ।
एक सहस एक सौ, रवद विहंडै धर राळे ।
"अभमाल" वार तीजी अडर, जवन देखि सिर जोरियौ ।
सूरजपसाव धिखते समर औसर तीजै औरियौ ।।

छंद मोतीदांम

उपै खग टूक लोही मझि एम ।
जळाधर वीच कळाधर जेम ।
वढ़ै वप वीजळ खंड विहंड ।
पड़ै धर तांम किया रत-पिंड ।।
सहेत झिलम्म पड़ै घमसांण ।
जाळी मझि कीर मतीरह जांण ।
आगै भड़ "सेर" सिरै अमराव ।
उठी "तरियन्न" सिरै अधिकाव ।।
जमात समेत दुहूं जमरांण ।
मिळै घमसांण छिबै असमांण ।

सांम्हैं सिर खाग वही घमसांण ।
जिकौ अधचंद्र भळक्कत जांण ।।
भवांनिय दीध सिंदूरज भाळ ।
भळाहळ जांणि त्रिती चख भाळ।
पेचां मझि स्रोण वहै अणपार ।
जटा गंग जांणिक धार हजार ।।
वघंबर जेम सिलै विकराळ ।
मँडै गळि माळ जिका रुँडमाळ ।
नँदी गण जेम तुरंग निहंग ।
जोगारँभ आठ सझै रिण जंग ।।

परिशिष्ट-2

लाख पसाव - क्रोड पसाव - अरब पसाव

ये राजस्थान के विद्यानुरागी नरेशों द्वारा कवियों को सम्मानार्थ भेंटस्वरूप दिये जाने वाले पुरस्कारों के सूचक पारिभाषिक शब्द हैं । इस प्रकार के विशिष्ट सम्मान भारत में ही नहीं समस्त विश्व में साहित्यकारों के सम्मान की अनूठी विशेषता है ।

प्राचीन समय में रुपये का मूल्य बहुत अधिक था इसलिए लाख पसाव (लक्षप्रसाद) के उपलक्ष्य में कुछ स्वर्ण मुद्रायें, नकद-राशि, जागीर में गांव, हाथी, घोड़े, पालकी, आभूषण आदि समवेत रूप में विशेष आयोजन द्वारा स्वयं महाराजा के हाथों से श्रीफल सहित कवि को सादर समर्पित किये जाते थे ।

क्रोड पसाव (कोटिप्रसाद) इससे उच्च पुरस्कार था, जो ऐसे विख्यात कवि के सम्मानार्थ समर्पित किया जाता था जिसें पूर्व में लाख पसाव सम्मान मिल चुका हो । इसमें लाख पसाव में दी जाने वाली राशि एवं अन्य बहुमूल्य उपकरणों का परिमाण कई गुना होता था ।

सिरोही के इतिहास प्रसिद्धशासक सुरतांण ने महाकवि दुरसा आढा एवं जामनगर के रावल जांम ने भक्त कवि ईसरदास को क्रोड पसाव देकर सम्मानित किया था । बीकानेर के काव्यप्रेमी महाराजा रायसिंह (कवि पृथ्वीराजराठौड़ के अंग्रज) ने तत्कालीन प्रसिद्ध चारण कवि शंकर बारहट को रीझ कर सवा करोड़ पसाव देने का इतिहास में नया प्रतिमान स्थापित किया था । इसकी पुष्टि दुरसा आढा की निम्नलिखित गीत-पंक्ति से होती है ।

सौ लाखां ऊपर नवसहंसा, लाख पचीस जु दीध हिलोळ ।

इससे संबंधित घटना उल्लेखनीय है । जब महाराजा ने कवि को करोड़ पसााव देने का आदेश दिया तो दीवान ने यह सोचकर

कि शायद महाराजा सा को करोड़-पसाव में दी जाने वाली राशि की विपुलता ज्ञात नहीं है, महाराजा सा को स्वयं थैलियों का "नजरपसाव" करने की विनति की । महाराजा सा दीवान की वास्तविक मनोभावना को समझ गये । उन्होंने थैलियों पर सरसरी नज़र डालते हुए कहा, "क्या करोड़ पसाव इतना ही होता है? फिर कविराज को सवा करोड़ पसाव दिया जाय । दीवान एवं कोषाध्यक्ष ने इससे अधिक राशि राजकोष से दी जाने में असमर्थता व्यक्त की तो महाराजा रायसिंह जी ने करोड़ पसाव के अतिरिक्त राशि के रूप में नागौर का पट्टा कवि शंकर बारहट को समर्पित किया था । वीकानेर महाराजा रायसिंह के वंशज महाराजा रतनसिंहजी की कीर्ति में रचित निम्नलिखित दोहे से इसकी पुष्टि होती है ।

रतन घराणै राज रै, ईढ़ न पूगै और ।
दत दादै रासै दियौ, नरियद गढ़ नागौर ।।

इस संवंध मे यह भी उल्लेखनीय है कि अजमेर के शासक वछराज गौड़ ने चारण कवि पीठवा मीसण को अरब पसाव देकर सम्मानित किया था । इसकी पुष्टि निम्नलिखित दोहे से होती है —

देतां अरव पसाव दत, वीर गौड़ बछराज ।
गढ़ अजमेर सुमेर सूं, ऊँचो दीसै आज ।।

कवियों को इस प्रकार सम्मानित करने में भी नरेशों में होड सी लगी रहती थी । इसी कारण एक ही कवि को अनेक नरेशों द्वारा लाख पसाव से सम्मानित किया जाना ऐतिहासिक तथ्य है । वस्तुतः कवियों एवं साहित्यकारों के सम्मान की यह विशिष्ट परम्परा राजस्थान की अपनी अनूठी विशेषता है ।

परिशिष्ट-3

संदर्भ-सूची

इतिहास ग्रंथ

वीर विनोद, भाग-2 - कविराजा शयामलदास

मारवाड़ की ख्यात (अप्रकाशित) - राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर ।

जोधपुर की ख्यात (अप्रकाशित) -

जोधपुर राज्य का इतिहास - गौरीशंकर हीराचंद औझा

टॉड राजस्थान - अनुवादक - बलदेवप्रसाद मिश्र

मारवाड़ राज्य का इतिहास - जगदीश सिंह गहलोत

मारवाड़ राज्य का इतिहास, भाग-1, पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ

शाहपुरा राज्य का इतिहास - गौरीशंकर हीराचंद ओझा

शाहपुरा की ख्यात (हस्तलिखित) - राजस्थानी शोधं संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.

साहित्यिक एवं अन्य ग्रंथ

वीरवांण (ढाढी बादर) - सं. रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत

विविध संग्रह - ठा. भूरसिंह मलसीसर

कविरत्नमाला - मुंशी देवीप्रसाद

प्राचीन राजस्थानी गीत -भाग 2 एवं 7 - सं. कविराज मोहनसिंह

राजरूपक (वीरभांण) - सं. पं. रामकर्ण आसोपा

राजस्थानी गीत संग्रह, भाग-2, सं. सौभाग्यसिंह शेखावत

डिंगल में वीर रस - सं. डॉ. मोतीलाल मेनारिया

विरद शिणगार - कविया करणीदान

सूरजप्रकास, भाग-1, 2 व 3 - सं. सीताराम लालस

जतीरासा (अप्रकाशित) - कविया करणीदान

चारणों अने चारणी साहित्य - झवेरचंद मेघानी
राजस्थानी सबद कोश - सीताराम लालस
राजस्थानी भाषा और साहित्य - डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
चारण यश प्रकाश - बारहट किशनसिंह
राजस्थानी भाषा और साहित्य - पं. नरोत्तमदास स्वामी
अभैगुण (अप्रकाशित) - सेवग प्रयाग कृत
अहमदाबाद री राड़ रा कवित्त - बखता खिड़िया
राजस्थानी भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. जगमोहनसिंह परिहार
मध्यकालीन चारण काव्य - डॉ. जगमोहन सिंह परिहार
राजस्थानी साहित्य का अनुशीलन - डॉ. शक्तिदान कविया

संस्था

राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश - मेहरानगढ़, जोधपुर
साहित्य संस्थान - विद्यापीठ, उदयपुर
पोथीखाना - सिटी पैलेस, जयपुर
अनुप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर
थलवट प्रकाशन - बिराई
नटनागर शोध संस्थान - सीतामऊ (मालवा)
श्री सौभाग्यसिंह शेखावत एवं डॉ. शक्तिदान कविया के निजी संग्रहालय